मासिक पत्रिका - वर्ष ०९, अंक ०३

'फाल्गुन-चैत्र' वि.सं. २०८१ (मार्च २०२५ ई.) श्रीकृष्ण सं. ५२५०

मान मन्दिर बरसाना

'श्रीजी संगीत विद्यालय' का उद्घाटन समारोह

मूल्य १०/-

‘श्रीजी संगीत विद्यालय’ के उद्घाटन-समारोह में भारतवर्ष के प्रसिद्ध शास्त्रीय कलाकारों द्वारा हुई संगीत-प्रस्तुति

अनुक्रमणिका

विषय- सूची पृष्ठ- संख्या

१ श्रीब्रजरसमय रंग-वर्षण ही होली.....................०५

२ वास्तविक ब्रजोपासक की रहनी...........................०८

३ वास्तविक विश्वासी भक्त 'प्रह्लाद'..........................१०

४ रसीली भक्ति 'संगीतमयी आराधना'............... ....१४

५ श्रीजी संगीत विद्यालय.............................. ......१८

६ ब्रजनिष्ठ परम भगवदीय 'श्रीकुम्भनदासजी'..............२४

७ श्रीकृष्णाश्रय का प्रवेश द्वार 'निष्कामता'...................२७

८ श्रीराधारानी की गौ-प्रेमाराधना...............................३०

|| राधे किशोरी दया करो ||

हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो ।
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो ।
विषम विषयविष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो ।
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो ।
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो ।
कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्‌यो ।

INSTAAL करें --- PLAY STORE से-----

MAANINI APP

बाबाश्री के सत्संग/कीर्तन/भजन, साहित्य, आदि यहाँ से FREE - DOWNLOAD कर सकते हैं व सुन सकते हैं ।

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८.०० से ९:०० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:०० से ८:०० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं ।

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –

"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपडी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले ।"

* योजना *

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकालें व मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवाद्रव्य किसी विश्वसनीय गौसेवा प्रकल्प को दान कर गौरक्षा कार्य में सहभागी बन अनन्त पुण्य का लाभ लें । हिन्दूशास्त्रों में अंशमात्र गौसेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है ।

संरक्षक- श्रीराधामानबिहारीलाल , प्रकाशक – राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर , गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)

mob. राधाकांत शास्त्री ....9927338666, Website :www.maanmandir.org , (E-mail :info@maanmandir.org)

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें । हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है – **सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ । जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ।।** (श्रीमद्भागवत३/७/४१)
अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता ।

प्रकाशकीय

आराधक में जब तक भक्तियोग सिद्ध न हो, तब तक अनुभावना का क्रम निरन्तर रखना आवश्यक है । असत् वस्तु में चित्त का दौड़ना 'कल्पना' है एवं सत् वस्तु में चित्त का दौड़ना 'भावना' है । 'भावना' के बिना न भक्ति सिद्ध होगी, न ज्ञान ही । ज्ञानमार्ग में देखें तो **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"** समग्र संसार को ब्रह्मरूप में स्वीकार करना होगा । निन्दक, चोर, डाकू, सबको ब्रह्म मानना होगा । 'ब्रह्मभावना' हो अथवा 'ब्रजभावना' गुण-दोष दृष्टि के जाने पर ही भावना की सिद्धि सम्भव है । सभी महापुरुषों ने इसी ब्रजभूमि की भावना व याचना की –

'यही है यही है भूलि भरमौ न कोऊ' (महावाणी सिद्धान्तसुख-१२)

अथवा **'जनम-जनम दीजै याही ब्रज बसिबो'** (छीतस्वामी) इसी भूमि में चिन्मय धाम की भावना ही 'ब्रजभावना' है ।

अहो तेऽमी कुञ्जास्तदनुपमरासस्थलमिदं गिरिद्रोणी सैव स्फुरति रतिरङ्गे प्रणयिनी ।
न वीक्षे श्रीराधां हरि हरि कुतोऽपीति शतधा विदीर्येत प्राणेश्वरि मम कदा हन्त हृदयम् ॥ (श्रीराधासुधानिधि - २११)

अ हा हा ! ये वे ही कुञ्जें हैं जो श्रीयुगल के काल में थीं । यह वही अनुपम रास-स्थल है, श्रीप्रिया-प्रियतम के रति रंग से प्रेम करने वाली यह वही गोवर्धन की कन्दरा है भाई, यह सम्पूर्ण ब्रज वही है, जहाँ श्रीकृष्ण एक-एक रज कणिका को पवित्र करते हुए चले हैं, दौड़े हैं, बैठे हैं और कभी-कभी तो रमणरेती आदि क्षेत्रों में रज ही बिछाते हैं, रज ही ओढ़ते भी हैं । अब कोई कहे यह तो मिथ्या कल्पना है तो मिथ्या ही सही किन्तु ऐसी मिथ्या भावनाओं से भी लोक-कल्याण हो तो कितना उत्तम है । ब्रजभूमि में प्रेमवश्यता के कारण श्रीभगवान् अति प्राकृत लीला करते हैं ।

"कारणाभावात् कार्याभावः" इस सर्वमान्य न्याय सिद्धान्तानुसार कार्य के पीछे कारण की पृष्ठभूमि निश्चित है अर्थात् बिना कारण के कार्य की कल्पना भी सम्भव नहीं है, अतः 'ब्रज' है - 'कारण' व 'लीला' है - 'कार्य' । 'ब्रज' के बिना लीला की सिद्धि सम्भव नहीं । इसका प्रमाण दिया श्रीव्यासजी ने – **'धाम्ना स्वेन सदा .....'** आज प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है श्रीव्यासजी का यह कथन । धाम से ही तो माया का निरसन व भक्ति का प्रकाशन हो रहा है । आज भी करोड़ों लोगों को ब्रज में आने से भक्ति-लाभ प्राप्त हो रहा है । कैसे ? धाम (कारण) से किन्तु कार्य (ब्रज-वर्णन) को भी छोड़ा नहीं श्रीशुकदेवजी ने क्योंकि कार्य (ब्रजलीलाओं) से ही कारण (श्रीधाम 'ब्रजभूमि') की सच्ची शोभा व सार्थकता होती है, जिससे जन-जन का परम मंगल सहज सम्भव होता है । ब्रज का अचर-सचर सब रसमय है, रस का ऐसा सम्मोहन है कि चराचर सृष्टि चित्रलिखित हो जाती है । **'सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ।**
कवय आनतकन्धरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥' (श्रीभागवतजी १०/३५/१५)

नदियों को देखो, रस के कारण उनके प्रवाह में स्तब्धता आ जाती है । तरु, लताओं से मधुधारा स्रवित हो रही है । सब उपासना में तल्लीन हैं । किसी के नेत्र बंद हैं तो कोई मौन धारण किये हुए है । रस की जाड्यावस्था को प्राप्त हो गये हैं । पर्वतों पर भी यही रस है, बादल भी अनुगर्जन कर रहे हैं; कैसी चिन्मयी प्रकृति है, अपने-आप ही संगीत-ध्वनि हो रही है । ब्रज के गाय, बछडे, मोर, हरिनियाँ, नदियाँ, बादल, पर्वत .....इत्यादि सबमें एक ही रस का प्रवाह है । युगल गीत के माध्यम से श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि महारास के बाद रस की समाप्ति न समझें । ब्रज की चराचर सृष्टि में नित्य-रस व्याप्त है । होरी-लीला की भी प्रारम्भिक भूमि ब्रज-वसुन्धरा ही है, प्रेमरस भरी 'रंगीली होली' का शुभारम्भ श्रीप्रियाजू के बरसाने धाम से होता है । इस बार रंगीली होली की पूर्व रात्रि वेला में 'श्रीप्रह्लाद-नाटिका' की प्रस्तुति होगी ।

कार्यकारी अध्यक्ष
राधाकान्त शास्त्री
श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

श्रीब्रजरसमय रंग-वर्षण ही होली

बाबाश्री के सत्संग 'श्रीराधासुधानिधि' (१०/२/२००९) से संकलित

ब्रज में बसंत पंचमी से ही होरी का प्रारम्भ हो जाता है । होलिका-दहन का प्रारम्भ लोग प्रह्लाद के उपाख्यान से बताते हैं किन्तु होली में रंग और रस का समावेश ब्रज में श्रीजी-ठाकुरजी के द्वारा किया गया । जितनी भी रस की विधायें हैं, रस की जितनी भी परम्परायें हैं, वे सब श्रीकृष्ण लीला से ही चली हैं; इसका प्रमाण श्रीमद्भागवत है । यह संसार में सबसे प्रबल और निर्विवाद प्रमाण है, जिसके बारे में कोई भी शंका नहीं की जा सकती । यों तो रामजी भी सीताजी के साथ होली खेलते हैं । महादेवजी की भी होली-लीला है । ये सब अनुकरण हैं परन्तु जो आर्ष प्रमाण हैं, उसके अनुसार समस्त रस विधाओं का संचालन कृष्णलीला से हुआ है; यह निष्पक्ष बात है । इसका प्रमाण है भागवत में रासपञ्चाध्यायी में । श्रीशुकदेवजी ने कहा कि संसार में रस की जितनी भी विधायें हैं, जितनी भी रस के आश्रय की कथायें थीं, वे सब राधारानी और श्रीकृष्ण से चलीं –

एवं शशाङ्कांशुविराजिता निशाः स सत्यकामोऽनुरताबलागणः ।
सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥ (श्रीभागवतजी १०/३३/२६)

शरद् पूर्णिमा के चन्द्रमा की कान्ति से सारा वृन्दावन श्वेत प्रकाशित हो रहा था, जैसे - कोई सफ़ेद चूने से घर को लेप दे तो उसकी कान्ति बढ जाती है, शुकदेवजी कहते हैं कि वैसे ही चन्द्रमा की किरणों ने सारे वृन्दावन को श्वेत बना रखा था । महारास की उन रात्रियों में अनन्त गोपियों के साथ अनुरत होकर, अपने अन्दर दिव्य प्रेम को रखकर, जितनी भी रस की लीलायें थीं, राधामाधव ने उसका प्रचलन किया । यह भागवत का प्रमाण है । भागवत के टीकाकार आचार्यों ने लिखा है कि महारास का प्रारम्भ ही होली से हुआ । रास का मतलब केवल नृत्य करना ही नहीं है । रस का समूह ही रास है । भगवान् ने अनेक रसमयी लीलाओं का संकल्प किया ।

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः । वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ (श्रीभागवतजी १०/२९/१)

उस समय बारह महीने की ऋतुएँ एक साथ आ गयीं । शरद ऋतु थी लेकिन मल्लिका आ गयी जो ज्येष्ठ मास में खिलती है और बड़ी सुगन्धदायक होती है । इसी तरह रास में बारह महीनों के पुष्प खिले । भगवान् के विचार करते ही सारी ऋतुएँ एक साथ आ गयीं । उन रात्रियों को भगवान् ने देखा और रमण करने का संकल्प किया । इसके पहले उन्होंने राधिकारानी का आश्रय लिया । इसके बाद उन्होंने आकाश में चन्द्रमा को देखा । आचार्यों ने इसकी बड़ी सुन्दर टीका की है । जब भगवान् ने चन्द्रमा को ध्यान से देखा तो उसमें श्रीजी बैठी थीं क्योंकि महारास में तो लक्ष्मी का प्रवेश ही नहीं है –

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः ।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन् प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥ (श्रीभागवतजी १०/२९/२)

चन्द्रमा उदय हुआ, कैसा चन्द्रमा था ? अपनी किरणों से प्राची दिशा को लाल कर रहा था । ऐसा क्यों था क्योंकि चन्द्रमा प्राची दिशा का नायक तो है नहीं । दसों दिशाओं के अलग-अलग नायक हैं । प्राची दिशा इन्द्र की वधू है । वारुणी है पश्चिमी दिशा किन्तु चन्द्रमा ने प्राची दिशा की ओर, ऐन्द्री दिशा की ओर अपनी किरणें फेंकीं और मर्यादा को तोड़ दिया । चन्द्रमा ने कृष्ण को यह दिखाया कि मैं तुम्हारा पूर्वज हूँ, मैंने मर्यादा को तोड़ दिया है, इसलिए तुम भी रास में कोई मर्यादा मत रखना । देखो, इन्द्र की वधू है प्राची दिशा और मैं इसके साथ होली खेल रहा हूँ । 'तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः ।' चन्द्रमा ने अपनी लाल किरणों से प्राची दिशा के मुख पर रोली लगा दी । कैसे ? अरुणेन – वे लाल किरणें अब गुलाल थीं । आचार्यों ने लिखा है चन्द्रमा ने गुलाल लेकर पूर्वी दिशा के मुख पर लेप कर दिया । उसने सारी मर्यादा को तोड़ दिया । श्यामसुन्दर ने बड़े ध्यान से चन्द्रमा को देखा तो उसमें श्रीजी दिखाई पड़ीं ।

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं रमाननाभं नवकुङ्कुमारुणम् । (श्रीभागवतजी १०/२९/३)

कैसा चाँद था ? नवकुङ्कुमारुण – जब नायक किसी नायिका के मुख पर गुलाल लगाता है तो वह भी कुछ लगाती है । प्राची दिशा के मुख पर चन्द्रमा ने गुलाल लगाया तो उसने भी चन्द्रमा का मुख लाल कर दिया । इसी को होली कहते हैं । श्रीकृष्ण ने देखा कि चन्द्रमा तो होली खेलकर आया है । इसका मुख लाल है । महारास के समय शरत्पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्र था । रमाननाभं – श्रीकृष्ण ने चन्द्रमा को देखा तो उन्हें दिखाई पड़ा कि ओहो ! इसमें तो श्रीजी विराज रही हैं । यहाँ रमा का अर्थ लक्ष्मी नहीं है क्योंकि लक्ष्मी का तो रास में प्रवेश ही नहीं है । जो श्रीकृष्ण को रमण कराती हैं, वे हैं रमा अर्थात् श्रीजी । चन्द्रमा श्रीजी के मुख की कान्ति को लेकर आया है तो श्रीकृष्ण समझ गये कि मैंने श्रीजी का आश्रय लिया था तो श्रीजी अब आदेश दे रही हैं कि अब रास आरम्भ कर दो । आदेश की देरी थी । श्रीकृष्ण समझ गये कि श्रीजी ने रास प्रारम्भ करने की आज्ञा दे दी है । आचार्यों ने लिखा है कि महारास का प्रारम्भ होली से हुआ है । क्योंकि नवकुङ्कुमारुण – चन्द्रमा अभी-अभी नया अबीर लगाकर आये हैं । अतः पहली बात तो यह है कि श्रीजी ने श्रीकृष्ण को आज्ञा दी कि अब रास प्रारम्भ करो । चन्द्रमा में भी श्रीकृष्ण को श्रीजी दिखाई पड़ीं । उधर उनके पूर्वज चन्द्रमा ने भी आदेश दे दिया था कि तुम हमारी सन्तान हो, इसलिए मर्यादा को तोड़ देना क्योंकि चन्द्रमा ने मर्यादा से अतिक्रमण कार्य किया था । प्राची दिशा इन्द्र की वधू है, उसके मुख पर चन्द्रमा ने गुलाल लगाया था । श्रीकृष्ण ने देखा कि हमारे पूर्वज चन्द्रमा भी कह रहे हैं कि आज मर्यादा का पालन मत करना । आज तो तुम केवल रस ही रस बहाओ । श्रीकृष्ण ने एक ओर चाँद को देखा और एक ओर श्रीजी को देखा । उन्होंने सोचा कि दो आज्ञा हो गयी है, एक तो पूर्वज की आज्ञा और दूसरी इष्ट या गुरु की । राधारानी श्रीकृष्ण की इष्ट भी हैं और गुरु भी हैं । अतः इष्ट की आज्ञा मिल गयी, गुरु की आज्ञा मिल गयी तथा पूर्वज की आज्ञा मिल गयी तो ठीक है, अब रास प्रारम्भ हो जाएगा । उसी समय श्रीकृष्ण ने वंशी उठाई । वंशी शब्द यहाँ श्लोक में नहीं आया है, केवल श्रीकृष्ण ने गाया है । इस तरह आचार्यों ने ऊपर से अध्याहार किया है । श्रीकृष्ण ने देखा कि सारा वृन्दावन चन्द्रमा की किरणों से रंग गया है । उसी समय उन्होंने सुन्दर गीत गाया । आचार्यों ने अध्याहार कर लिया – वेणुना इति शेषः । वंशी का अध्याहार किया गया । कुछ आचार्यों ने योगमाया का अर्थ 'वंशी' भी किया और कुछ ने योगमाया का अर्थ 'राधारानी' किया है ।

अस्तु, जब चन्द्रमा ने श्रीकृष्ण से कहा कि तुम मेरे वंशज हो और आज तुम्हारा रास का संकल्प है तो तुम संकोच मत करना, मर्यादा के बन्धन में मत पड़ना । मैं तो तुम्हारा पुरखा होकर भी मर्यादा को तोड़ रहा हूँ और ऐसा कहकर चन्द्रमा ने गुलाल लेकर पूर्व की दिशा के मुख को रंग दिया । प्राची दिशा ने भी चन्द्रमा के मुख पर कुंकुम का लेप कर दिया और इस तरह चन्द्रमाजी आकाश में होली खेलकर आये । श्रीकृष्ण ने देखा कि इन्होंने तो होली खेली है । इसीलिए आचार्यों ने लिखा है कि महारास का प्रारम्भ होली से हुआ है । यह आर्ष प्रमाण है । सब जगह महापुरुषों के पद पीछे गाये जाते हैं, पहले आर्ष प्रमाण को लिया जाता है । जैसे - हम सूरदासजी, नन्ददासजी का प्रमाण दें, राधावल्लभ सम्प्रदाय के आचार्य हरिवंश जी का प्रमाण दें, स्वामी हरिदासजी का अथवा महावाणी का प्रमाण दें तो ये सब पीछे हैं, इनसे पहले आर्ष प्रमाण की आवश्यकता होती है क्योंकि ये सब आचार्य तो कुछ समय पहले ही आये हैं । विद्वान् लोग आर्ष प्रमाण को मानते हैं । आर्ष प्रमाणों में सर्वश्रेष्ठ प्रमाण श्रीमद्भागवत का है और इसीलिए वहीं से प्रमाण प्रस्तुत किया जा रहा है कि रस की सारी विधायें राधा-माधव से चली हैं । ऐसा आर्ष प्रमाण कहीं और नहीं है, न वाल्मीकि रामायण में है, न तुलसीकृत रामायण में है, न शैव सम्प्रदाय के ग्रन्थों में है । एक अन्य प्रमाण गर्ग संहिता का है । उसके अनुसार होली का प्रारम्भ हुआ तो उस समय श्रीकृष्ण बरसाने में आये । उसका वर्णन किया गया है –

श्रीयौवनोन्मदविघूर्णितलोचनोऽसौ नीलालकालिकलितांसकपोलगोलः ।
सत्पीतकञ्चुकघनान्तमशेषमारा-दाचालयन् ध्वनिमता स्वपदारुणेन ॥ (श्रीगर्गसंहिता, माधुर्यखण्ड, अध्याय १२/८)

श्रीजी के प्रेम में उनके नेत्र झूम रहे हैं । राधिका रानी के प्रेम की मदिरा श्रीकृष्ण के नेत्र में मादकता पैदा कर रही है । राधिकारानी के यौवन को देखकर इनके नेत्र मद से झूम रहे हैं । होली खेलने के लिए नन्दनन्दन बरसाना में आये हैं ।

बरसाने चलो खेलें होरी ।

पर्वत पे वृषभानु महल है, जहाँ बसे राधा गोरी । चोबा चन्दन अतर अरगजा, केशर गागर भर घोरी ॥

उतते आये कुँवर कन्हैया, इत ते राधा गोरी । सूरदास प्रभु तिहारे मिलन कूँ, चिरजीवो मंगल जोरी ॥

गर्ग संहिता का यह प्रमाण है कि श्रीकृष्ण बरसाने में होली खेलने आये हैं तो उनकी नीली अलकावली ने गालों को चारों ओर से ढँक लिया है । शरीर पर पीले रंग का जामा अपनी घनी शोभा बिखेर रहा है । बड़ी ही अदा के साथ श्रीकृष्ण चल रहे हैं । उनके चरणों के नूपुर बज रहे हैं और उन्होंने पाँवों में महावर भी लगा रखा है । इस तरह की शोभा से सम्पन्न होकर श्रीकृष्ण बरसाने में होली खेलने के लिए आ रहे हैं ।

बालार्कमौलिविमलाङ्गदहारमुद्यद्विद्युत्क्षिपन्मकरकुण्डलमादधानः ।

पीताम्बरेण जयति द्युतिमण्डलोऽसौ भूमण्डले सधनुषेव घनो दिविस्थः ॥ (श्रीगर्गसंहिता, माधुर्यखण्ड, १२/९)

उनके मस्तक पर बाल रवि के समान कान्तिमान मुकुट है । वे भुजाओं में विमल अङ्गद, वक्षःस्थल पर हार और कानों में बिजली को भी लज्जित करने वाले कुण्डल धारण किये हुए हैं । इस भूमण्डल पर पीताम्बर की पीली प्रभा से सुशोभित उनका श्याम कान्तिमण्डल उसी प्रकार उत्कृष्ट शोभा पा रहा है, जैसे आकाश में इन्द्रधनुष से युक्त मेघमण्डल सुशोभित होता है । **'आबीरकुङ्कुमरसैश्च विलिप्तदेहो हस्ते गृहीतनवसेचनयन्त्र आरात् ।**

प्रेक्षंस्तवाशु सखि वाटमतीव राधे त्वद्रासरङ्गरसकेलिरतः स्थितः सः ॥' (श्रीगर्गसंहिता, माधुर्यखण्ड - १२/१०)

अबीर और केसर उनके सारे अंगों में लगा हुआ है । उनके हाथ में पिचकारी है । हे सखि राधे ! वे बरसाने में आ गये हैं । आपकी प्रतीक्षा में खड़े हैं और आपको बुला रहे हैं ।

दरसन दै निकसि अटा में ते ।

लट सरकाय दरस दै प्यारी, जैसे निकस्यो है चंद घटा में ते ॥

कोटि रमा सावित्री भवानी, निकसी हैं चरन छटा में ते ।

पुरुषोत्तम प्रभु यह रस चाख्यो, माखन कढ्यो मठा में ते ॥

गर्गसंहिता का यह प्रमाण है कि सखियाँ श्रीजी से कह रही हैं कि श्रीकृष्ण आपकी प्रतीक्षा में सामने खड़े हैं, आप चलिए, वे आपका आवाहन कर रहे हैं ।

निर्गच्छ फाल्गुनमिषेण विहाय मानं दातव्यमद्य च यशः किल होलिकायै ।

कर्तव्यमाशु निजमन्दिररङ्गवारि पाटीरपङ्कमकरन्दचयं च तूर्णम् ॥ (श्रीगर्गसंहिता, माधुर्यखण्ड - १२/११)

हे सखि ! तुम भी मान छोड़कर होली खेलने के लिए निकलो । निश्चय ही आज होलिका को यश देना चाहिए और अपने भवन में तुरन्त ही रंग मिश्रित जल, चन्दन के पङ्क और मकरन्द (इत्र आदि पुष्प रस) का अधिक मात्रा में संचय कर लेना चाहिए । **'उत्तिष्ठ गच्छ सहसा निजमण्डलीभिर्यत्रास्ति सोऽपि किल तत्र महामते त्वम् ।**

एतादृशोऽपि समयो न कदापि लभ्यः प्रक्षालितं करतलं विदितं प्रवाहे ॥' (श्रीगर्गसंहिता, माधुर्यखण्ड, १२/१२)

परम बुद्धिमती प्यारी सखी ! उठो और सहसा अपनी सखीमण्डली के साथ उस स्थान पर चलो, जहाँ पर वे श्यामसुन्दर मौजूद हैं । ऐसा समय फिर कभी नहीं मिलेगा । बहती धारा में हाथ धो लेना चाहिए – यह कहावत सर्वत्र विदित है ।

नारदजी कहते हैं कि तब मानवती श्रीराधा मान छोड़कर उठीं और सखियों के समूह से घिरकर होली का उत्सव मनाने के लिए निकलीं । चन्दन, अगर, कस्तूरी, हल्दी तथा केसर के घोल से भरी हुई डोलचियाँ लिए वे बहुसंख्यक व्रजाङ्गनाएँ एक साथ होकर चलीं । वे हास्ययुक्त गालियों से सुशोभित होली के गीत गा रही थीं । अबीर, गुलाल के चूर्ण मुट्ठियों में ले-लेकर इधर-उधर फेंकती हुई वे व्रजाङ्गनाएँ भूमि, आकाश और वस्त्र को लाल किये देती थीं । वहाँ करोड़ों मुट्ठियाँ अबीर एक साथ उडती थीं । सुगन्धित गुलाल के चूर्ण भी कोटि-कोटि हाथों से बिखेरे जाते थे ।

इसी समय ब्रजगोपियों ने श्रीकृष्ण को चारों ओर से घेर लिया मानो सावन की साँझ में विद्युन्मालाओं ने मेघ को सब ओर से अवरुद्ध कर लिया हो । गोपियों ने पहले तो श्रीकृष्ण के मुँह पर खूब अबीर-गुलाल पोत दिया, फिर सारे अंगों पर अबीर-गुलाल बरसाये तथा केसर युक्त रंग से भरी हुई डोलचियों द्वारा उन्हें विधिपूर्वक भिगोया । वहाँ जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही रूप धारण करके भगवान् भी उनके साथ विहार करते रहे । उस होलिकोत्सव में श्रीकृष्ण श्रीराधारानी के साथ वैसी ही शोभा पाते थे, जैसे वर्षाकाल की संध्या वेला में आकाश में बिजली के साथ बादल सुशोभित होता है । श्रीराधारानी ने श्रीकृष्ण के नेत्रों में काजल लगा दिया । श्रीकृष्ण ने भी अपना नया उत्तरीय (दुपट्टा) गोपियों को उपहार में दे दिया । इसके बाद श्यामसुन्दर नन्दगाँव को लौट गये, उस समय समस्त देवता उनके ऊपर फूलों की वर्षा करने लगे ।

इस तरह होली का प्रचलन राधामाधव के द्वारा ब्रजलीला के माध्यम से हुआ । बाकी सब जगह उसका अनुकरण किया गया । केवल बरसाना ही नहीं, ब्रज की एक-एक गली, एक-एक कोना श्यामा-श्याम एवं उनकी सखियों ने रंग से रंग दिया । ऐसी ब्रज की कोई गली नहीं है, कोई गाँव नहीं है, जहाँ होली के रस को वे न बहा रहे हों ।

'ब्रज कौ दिन दूलह रंग भरयौ ।
हो-हो होरी बोलत डोलत, हाथ लकुट सिर मुकुट धरयो ॥
गाढ़ै रंग रंग्यो ब्रज सगरो, फाग खेल को अमल परयो ।
वृन्दावन हित नित सुख बरषत, गान तान सुनि मन जो हरयो ॥'

वास्तविक ब्रजोपासक की रहनी

'श्रीबाबामहाराज' के बारे में 'रामा पण्डितजी, बठैन' (११/१२/२०१३) द्वारा कथित संक्षिप्त भावोद्गार

मैं सन् १९५५ में लगभग दस वर्ष का था । मेरे गाँव (बड़ी बठैन कला) के कुछ वयोवृद्ध ब्रजवासी व चाचा ताऊ इत्यादि हरियाली तीज के पर्व पर श्रीबाबा का दर्शन करने मानमन्दिर आते थे । वे यहाँ बाबा का सत्संग करते थे और हमारे गाँव में दाऊजी की जो पुरानी समाज होती थी, उसकी चर्चा करते थे; उन्हीं लोगों के साथ मैं भी आता था । श्रीबाबा हमारे गाँव में होरी-लीला देखने जाया करते थे । श्रीबाबा मानगढ़ से पैदल जाते थे, दो-चार साधु भी उनके साथ जाते थे । बाबा का सादा वेष रहता था । हमारे गाँव में बाबा दाऊजी की नचनी होरी देखते थे । उसके बाद वे बठैन गाँव के ब्रजवासियों के दाऊजी के समूह के साथ जाववट में हुरंगा (होरी) खेलने जाते थे । श्रीबाबा जाववट में दाऊजी की झण्डी के साथ झामे में रहते थे और अच्छी-अच्छी होरी की तुक बोलते थे । जैसे – 'छोरा लइयो तीर कमान, मुडेली पे बुलबुल बैठी रे ।' 'गोरी सज ले रसिया आओ, तेरो नीठ-नीठ घर पाओ ॥' 'खातिर कर ले नई गुजरिया, रसिया ठाडो तेरे द्वार ।' 'गीता पढ़े छैल की नार, बैठ अपने चौबारे में ।' इस प्रकार होरी-लीला की कई तुकें बाबा बोलते थे । उस समय बाबा की आयु लगभग २०-२५ वर्ष रही होगी । मैं छोटा-सा था, बाबा को देखता रहता और सोचता था कि इस अवस्था में ये बाबा कितने सुन्दर भाव के साथ ब्रज में घूमते रहते हैं । बाबा का शरीर बहुत बढ़िया था, देखने में बहुत ही सुन्दर लगते थे । हर ब्रजवासी बाबा का संग करता था । कुछ ब्रजवासी बाबा को पहनने के लिए कुछ कपड़े देते थे तो बाबा नहीं लेते थे, कुछ पैसे देते तो बाबा पैसे भी नहीं लेते

थे । वे किसी से कुछ नहीं लेते थे किन्तु वे ब्रज के घर-घर में भिक्षा माँगकर खा लेते थे । होली देखने के बाद बाबा हमारे गाँव में एक-दो दिन रुकते थे, दाऊजी की नचनी होरी देखते और वे स्वयं भी गोपियों के साथ नाचते थे । इसके बाद वे पैदल ही मानगढ़ आते थे । हम लोग बाबा से कहते थे कि बाबा, कुछ दिन और रुक जाओ तो वे कहते थे – 'नहीं, हम लोग मानमन्दिर में कीर्तन करते हैं, इसलिए मैं जा रहा हूँ ।

प्रतिपदा को दाऊजी के सामने लट्ठमार होरी होती है, धूरेन्दी (धूल भरी होरी) होती है; उसको देखने बाबा हमारे गाँव में आते थे तथा गोपियों और ग्वालबालों के साथ होरी खेलते थे, फिर वहाँ से वापस मानगढ़ आते थे, इसके बाद दौज के दिन दोपहर को बठैन के ब्रजवासियों के साथ दाऊजी की झन्डी और जामे के साथ श्रीबाबामहाराज जाववट में लट्ठमार होरी खेलने जाते थे । इसके बाद बठैन में तीज के दिन दाऊजी का मेला होता है, उसको बाबा देखते थे और रात्रि को गाँव में रुकते थे । नचनी होरी में बाबा सखियों के साथ बीच में नृत्य करते थे । चौथ को दिन भर हमारे गाँव में होरी होती है तो सारे दिन उस होरी को भी बाबा देखते और नाचते थे । मन्दिर में ब्रजवासी रात भर कीर्तन करते थे तो बाबा भी उनके साथ कीर्तन करते थे और अगले दिन बठैन से वे पैदल ही मानगढ़ आते थे । गाँव में बाबा मधुकरी माँगकर ही खाते थे, कोई उनको अपने घर में बिठाकर खिलाता तो वे नहीं खाते थे । ब्रजवासी बाबा को वस्त्र और पैसे देते तो बाबा मना कर देते थे और कहते थे कि मुझे संग्रह नहीं करना है । मैं अपने मन में सोचता था कि यह बाबाजी कैसा है, जो किसी से कुछ लेता नहीं है, होरी में गाँव में नृत्य करता है, भिक्षा माँगकर खाता है, किसी से दूध-घी भी नहीं लेता है । मैं सोचता था कि इन महात्मा के तो बहुत अच्छे त्याग के विचार हैं । बाबा के दिव्य गुणों को देखकर मेरा मन उनके साथ लगने लगा और फिर मुझे घर में रहना अच्छा नहीं लगता था । मैं अपने घर वालों की बात नहीं मानता था और हर महीने, हर पन्द्रह दिन में (हरियाली तीज, एकादशी, अमावस्या इत्यादि में) श्रीबाबामहाराज का दर्शन करने मानगढ़ आता था । बचपन से ही मैंने श्रीबाबा के शरीर में अद्भुत तेज देखा, उनके शारीरिक बल की भी कोई सीमा नहीं थी किन्तु फिर भी श्रीबाबा किसी से लड़ते-झगड़ते नहीं थे और न ही कभी उन्होंने किसी से कुछ माँगा । वे केवल कीर्तन करते रहे, कीर्तन के ही बल पर बाबा ने गह्वरवन की सुरक्षा हेतु संघर्ष किया । कुछ ब्रजवासी लाठी-बल्लम लेकर बाबा को मारने आये । श्रीबाबा ने कहा – 'अरे ब्रजवासियो ! तुम तो हमारे इष्ट हो । हम तुमसे लड़ेंगे नहीं, हम तो तुमको प्रणाम करते हैं ।' बाबा तो सदा से ही सबके साथ विनम्रतापूर्वक व्यवहार करते आये हैं, कभी भी अपने विरोधियों पर भी क्रोध नहीं किया । कितने ही लोग रात के समय मानमन्दिर से श्रीबाबा को भगाने के लिए आये किन्तु वे यहाँ से नहीं गये, श्रीराधारानी के आश्रय से दीनतापूर्वक रहे । श्रीबाबा का चमत्कार मैंने बचपन से देखा है । मैं लगभग दस वर्ष की उम्र से अपने गाँव के बड़े-बूढ़ों के साथ मानमन्दिर आने लग गया था । बाबामहाराज को देखकर मेरा मन उनके प्रति ऐसा आकर्षित हुआ कि घर जाने की मेरी इच्छा नहीं होती थी । मैं सोचता था कि ये कैसे बाबा हैं कि किसी से लड़ाई-झगड़ा किये बिना ही सारी लड़ाइयाँ जीत लेते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि ये कोई अवतार हैं । श्रीहनुमानजी जैसा इनका शरीर है, किसी से पैसा लेते नहीं, दूध-घी का सेवन नहीं करते, ये कौन हैं ? बाबा रात के कीर्तन में दो-तीन घंटे नृत्य करते थे, रात भर कीर्तन करते थे, उसी के प्रभाव से बाबा ने गह्वरवन की रक्षा के लिए चालीस साल तक संघर्ष किया । किसी से कुछ नहीं कहा, न स्वयं किसी कोर्ट-कचहरी में गये, न किसी से पैसा माँगा, न अन्य किसी प्रकार का सहयोग माँगा । मैंने तो बाबा को केवल कीर्तन करते हुए देखा और इसी के बल से उन्होंने गह्वरवन की लड़ाई को जीत लिया । उस समय बाबा लगभग २५ साल के थे और मैं १५ साल का था । मैं हर महीने घर से भागकर श्रीबाबा के पास आता था तो मेरे घर वाले मुझे रोकते थे और कहते थे कि वहाँ क्यों जाता है, वहाँ जाकर तू साधु हो जाएगा । मैं कहता था कि मैं तो बाबा के पास जाऊँगा, वे बहुत अच्छे महात्मा हैं, सभी को बढ़िया कीर्तन करना सिखाते हैं । श्रीबाबा महाराज ब्रजवासियों से बड़ा प्रेम करते थे ।

श्रीगह्वरवन की रक्षा, गोमती गंगा के शोधन के बाद श्रीबाबा ने ब्रज के पर्वतों को विनाश से बचाया । इन पर्वतों पर बहुत-से श्रीकृष्णलीला के चिह्न हैं । श्रीबाबा ने ब्रजयात्रा आरम्भ करने से पहले इन सब चिह्नों की खोज कर ली थी । जब खनन-माफियाओं ने पर्वतों का नाश आरम्भ किया तो श्रीबाबा ने उनसे ब्रज के पर्वतों को नष्ट न करने का अनुरोध किया, उनसे कहा कि यदि तुमको पर्वतों को तोड़कर पैसा कमाना है तो ब्रज को छोड़ दो, ब्रज के बाहर राजस्थान में बहुत-से पर्वत हैं, उनको तोड़ो । ब्रज के पर्वत धार्मिक महत्त्व के हैं, इनको तोड़ना बहुत बड़ा पाप है । जब श्रीबाबा के अनुरोध करने पर भी पर्वत के विनाशकों ने कोई ध्यान नहीं दिया तो श्रीबाबा ने उनके विरुद्ध भी कीर्तन के बल पर आन्दोलन छेड़ दिया । कितने ही पहाड़ों पर श्रीबाबा की प्रेरणा से मानमन्दिर के साधुओं ने धरना दिया, वहाँ अखण्ड कीर्तन किया । सुनहरा और ऊँचा गाँव के पर्वत के बीच में श्रीबाबा धरना देकर स्वयं बैठे । मैंने सुना तो ग्वालबालों के साथ वहाँ पहुँचा और कहा कि बाबा ! हम इन लोगों से लड़ाई करेंगे, इनको पहाड़ तोड़ने से रोकेंगे । बाबा ने मुझे रोका और कहा कि किसी से कोई लड़ाई-झगड़ा नहीं करना है, केवल कीर्तन करना है । कीर्तन करो, उसके प्रभाव से अपने-आप ही पर्वतों का विनाश बन्द हो जाएगा । मैंने कहा – 'बाबा ! ऐसा कैसे हो जाएगा ? केवल कीर्तन करने से पहाड़ों की रक्षा कैसे होगी ?' श्रीबाबा ने कहा कि कीर्तन सब कार्य करेगा । बाबा स्वयं धरने पर बैठे थे । वहाँ अखण्ड कीर्तन चल रहा था । श्रीबाबामहाराज 'श्रीगीता-भागवत-रामायण-राधासुधानिधि' इत्यादि ग्रन्थों का पाठ करते व कीर्तन करवाते थे । बाबा बहुत दिनों तक लगातार पहाड़ पर धरना देकर बैठे रहे । ब्रजयात्रा के अन्तिम दिन तो बाबा ने कामां में आमरण अनशन कर दिया, उसके प्रभाव से राजस्थान सरकार झुक गयी और ब्रज के सभी पर्वतों का विनाश स्थायी रूप से बन्द हो गया । पर्वतों की रक्षा के संघर्ष में बाबा को बहुत कष्ट सहन करना पड़ा । अनेकों बार खनन-माफियाओं ने श्रीबाबा को जान से मारने का प्रयास किया, उन्हें विष तक दिया गया । एक बार तो क्रेशर (पहाड़ों का खनन करने) वाले अपने दल-बल के साथ मान मन्दिर का घेराव करने आये थे किन्तु मान मन्दिर तक नहीं आ पाए, बरसाना में ही जुटे रहे । मैं भी ग्वालबालों को लेकर बाबा के पास आया और उनसे कहा कि हम लोग इनसे लड़ेंगे, तब भी बाबा ने मुझे रोक दिया और कहा कि कुछ मत करो केवल कीर्तन करो, राधारानी रक्षा करेंगी । सभी ने कीर्तन किया और उसके प्रभाव से पहाड़ तोड़ने वालों को हार माननी पड़ी, ब्रजलीलाओं के पर्वत सुरक्षित हो गए ।

वास्तविक विश्वासी भक्त 'प्रह्लाद'

बाबाश्री द्वारा कथित वाणी (१२/३/२०१४ 'एकादशी-सत्संग, प्रह्लादजी', ९/३/२०१३ after n.b. satsang) से संकलित

ब्रज में एक गाँव है 'फालेन' । फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा के दिन होलिका-दहन होता है । फालेन गाँव में प्रह्लाद- कुण्ड है, उस कुण्ड के किनारे प्रह्लादजी का मन्दिर है । उस मन्दिर का पुजारी होली के एक महीने पहले से केवल दूध पीकर रहता है, फलाहार करता है, अन्न ग्रहण नहीं करता तथा प्रह्लादजी का मन्त्र जपता है । होलिका-दहन को रात के समय वह मन्त्र जपता रहता है और मन्दिर में घी का दीपक जलता रहता है । जब उसको दीपक की लौ ठण्डी प्रतीत होती है, तब वह समझ जाता है कि अब यह मन्त्र मेरे लिए सिद्ध हो गया है । अब मुझे अग्नि जला नहीं पायेगी । उसके बाद वह प्रह्लाद-कुण्ड में स्नान करता है । स्नान करने के बाद वह लकड़ियों के विशाल ढेर में जलती अग्नि के बीच से दौड़ता हुआ निकल जाता है, वह जलता नहीं है । जब वह निकलकर चला जाता है तब सब लोग उसके चरण स्पर्श करने के लिए दौड़ पड़ते हैं । यह लीला प्रतिवर्ष फालेन गाँव में होलिका-दहन के दिन होती है । इसी गाँव में भगवान् श्रीकृष्ण ने पाँच हजार वर्ष पहले ब्रजवासियों को प्रह्लादजी के होलिका-दहन में जीवित बचने की लीला का दर्शन कराया था । प्रह्लादजी के पिता का नाम था हिरण्यकशिपु, वह एक शक्तिशाली दैत्य था और भगवान् से द्वेष करता था । उसने दस हजार वर्ष तक तपस्या की थी । उसकी कठोर तपस्या के प्रभाव से समुद्र खौलने लगा, भूचाल आने लगा, पृथ्वी हिलने लगी । तपस्या से शक्ति मिलती है । हिरण्यकशिपु की तपस्या के प्रभाव से ब्रह्माजी प्रकट हो गये । ब्रह्माजी ने उससे पूछा कि

तुम इतना कठोर तप क्यों कर रहे हो ? हिरण्यकशिपु बोला – 'मैं अमर होना चाहता हूँ । मुझे ऐसा वरदान दीजिये कि मेरी कभी भी मृत्यु न होवे ।' ब्रह्माजी ने कहा कि यह वरदान मैं तुम्हें नहीं दे सकता हूँ ।

भगवान् ने ऐसा नियम बनाया है कि जिसका जन्म हुआ है, एक दिन उसकी मृत्यु अवश्य ही होती है । इस नियम का स्वयं भगवान् भी पालन करते हैं । वे पृथ्वी पर अवतार लेते हैं और फिर लीला करके चले जाते हैं । भगवान् की मृत्यु नहीं होती है । भगवान् इस संसार में अपनी इच्छा से आते हैं और अपनी इच्छा से चले जाते हैं । हम लोग काल के, मृत्यु के आधीन होकर आते हैं और मृत्यु के आधीन होकर जाते हैं । भक्ति इसलिए की जाती है जिससे कि हम भगवान् के पास पहुँच जाएँ । उनके धाम में न जन्म है, न मृत्यु है, न कोई बीमारी है, न कोई दुःख है, न किसी प्रकार का कष्ट है । इस संसार में दुःख है, अनेक प्रकार के कष्ट हैं, बीमारी, बुढ़ापा और मृत्यु है । 'भजन' इन सब कष्टों से, समस्याओं से बचने के लिए किया जाता है ।

हिरण्यकशिपु को जब ब्रह्माजी ने अमर होने का वरदान देने से मना कर दिया तो उसने कहा कि ऐसा वर दीजिये कि मुझे संसार में कोई जीत न पाए, चाहे देवता हो चाहे दैत्य अथवा मनुष्य, संसार का कोई भी जीव मुझे पराजित न कर सके । ब्रह्माजी ने कहा कि ठीक है, यह वरदान मैं दे दूँगा । ब्रह्माजी हिरण्यकशिपु को वरदान देकर चले गये तो उनके वर के प्रभाव से उसने संसार को जीत लिया । सभी देवताओं को पराजित कर दिया । जब शक्ति आ जाती है तो जीव अत्याचार करता है । हिरण्यकशिपु ने भी बहुत अत्याचार किये । ऋषि-मुनियों को भी उसने मारा-पीटा । देवताओं को स्वर्ग से भगा दिया । तब सभी लोग दुखी होकर भगवान् को पुकारने लगे कि इस निर्दयी असुर से हमें बचाओ । भगवान् ने आकाशवाणी के माध्यम से कहा कि जब यह अपने पुत्र प्रह्लाद से वैर करेगा तब मैं इसको मार डालूँगा । जो व्यक्ति भक्तों से द्रोह करता है, उसे भगवान् अवश्य ही दण्ड देते हैं, उसे क्षमा नहीं करते हैं । हिरण्यकशिपु ने सारे संसार को जीतकर घोषणा कर दी कि मेरे राज्य में कोई विष्णु की भक्ति नहीं कर सकता । मैं ही भगवान् हूँ । आगे चलकर उसके एक पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम प्रह्लाद रखा गया । प्रह्लाद जब अपनी माता के गर्भ में थे, उसी समय हिरण्यकशिपु तप करने चला गया था । अवसर पाकर गर्भस्थ शिशु को मार डालने के उद्देश्य से इन्द्र ने हिरण्यकशिपु की पत्नी कयाधू का हरण कर लिया । उस समय नारदजी ने इन्द्र को समझाया कि इसके गर्भ में भगवान् का परम प्रेमी भक्त है । तुम उसकी हत्या नहीं कर सकते हो । कयाधू को छोड़ दो । नारदजी के कहने पर इन्द्र ने कयाधू को छोड़ दिया । नारदजी कयाधू को अपने आश्रम ले आये और उसके गर्भस्थ शिशु को लक्ष्य करके प्रतिदिन भगवान् की कथा सुनाया करते थे । प्रह्लादजी ने माता के गर्भ से ही नारदजी के समस्त उपदेशों को श्रवण कर लिया था । इसलिए वे जन्म से ही भगवान् के सिद्ध भक्त थे । हिरण्यकशिपु ने उन्हें असुरों के गुरुकुल में आसुरी विद्या पढ़ने के लिए भेजा किन्तु वहाँ भी अवसर पाकर प्रह्लाद असुर बालकों को भगवान् की भक्ति की शिक्षा दिया करते और उनसे कीर्तन करवाया करते थे । प्रह्लाद ने अपने पिता से भी स्पष्ट कह दिया कि भगवान् तो भगवान् ही हैं, आप भगवान् नहीं हो सकते हैं । मैं तो भगवान् की भक्ति अवश्य ही करूँगा । प्रह्लादजी के उपदेशों से प्रभावित होकर असुर बालक भी भगवान् की भक्ति करने लगे, कीर्तन करने लगे । प्रह्लादजी बच्चों को सिखाते थे – **'पढ़ो रे भाई कृष्ण गोविन्द मुरारि ।'** अरे भाइयो ! कृष्ण, गोविन्द, मुरारी आदि भगवन्नामों की पढ़ाई करो । भगवान् के नाम का कीर्तन करो, यही सबसे बड़ी पढ़ाई है । अंग्रेजी, गणित, इतिहास, भूगोल आदि की पढ़ाई वास्तविक (भक्ति देने वाली) नहीं है, क्योंकि भक्ति के अभाव में इसके पढ़ने से सांसारिक आसक्तियाँ बढ़ती हैं और जीव का विनाश हो जाता है । इसलिए भगवान् की भक्ति (श्रीभगवान् के नाम) की पढ़ाई ही सच्ची पढ़ाई है, जो भगवान् से मिलाकर सदा के लिए अविनाशी (अमर) बना देती है । **'चरण कमल मन सन्मुख राखौ, कबहुँ न आवै हारि ।'** भगवान् के चरण सामने रखोगे, भक्ति करोगे तो कभी हार नहीं होगी । **'कहै प्रह्लाद सुनो रे बालक, लीजै जनम सुधारि ।'**

प्रह्लादजी ने कहा – 'बालको ! अपने जन्म को सुधारो ।' बालकों ने कहा – 'प्रह्लाद ! यदि हम लोग भक्ति करेंगे, कीर्तन करेंगे तो तेरा पिता हमें मारेगा । वह हमें कीर्तन नहीं करने देगा ।' प्रह्लादजी ने कहा – **'को है हिरणकशिपु**

अभिमानी, तुम्हें सकै जो मारि ।' भक्ति करने वाले को कोई मार नहीं सकता है । भक्त को डरना नहीं चाहिए । **'जनि डरपहु जड़मति काहू सौं, भक्ति करौ इकसारि ।'** एक जैसी भक्ति करो । डरना नहीं चाहिए । भक्त को कोई नहीं मार सकता है । **'राखनहार कोई है औरै, श्याम धरे भुज चारि ।'** भगवान् रक्षा करने वाले हैं, जिनकी हजारों भुजायें हैं ।

हिरण्यकशिपु ने बहुत प्रयास किया कि यह लड़का मर जाए । उसने दैत्यों के द्वारा प्रह्लाद को बड़े-बड़े पर्वतों से गिरवाया, समुद्र में डाला गया, तोप के गोले चलाए गये, जहर दिया गया, पागल हाथी से कुचलवाया, गुफा में बन्द करवाया किन्तु प्रह्लाद का एक बाल भी बाँका नहीं हुआ । तब हिरण्यकशिपु सोचने लगा कि यह लड़का कैसे मरेगा ? हिरण्यकशिपु को चिन्ता करते देखकर उसकी बहन होलिका ने कहा – 'भैया ! चिन्ता मत करो । मुझे ब्रह्माजी ने वरदान में एक ऐसी चुनरी दी है कि उसको ओढ़कर मैं आग में बैठ जाऊँ तो आग मुझे नहीं जला सकती । मैं अपनी गोद में प्रह्लाद को लेकर अग्नि में बैठ जाऊँगी तो मैं तो बच जाऊँगी और प्रह्लाद मर जाएगा ।' हिरण्यकशिपु बोला – 'हाँ, ठीक है । बहन ! ऐसा ही करो । यह लड़का मेरा शत्रु है ।' पूर्णिमा के दिन होलिका लकड़ियों के ढेर पर प्रह्लाद को गोद में लेकर बैठी और उसने असुरों को इशारा कर दिया कि आग लगा दो । लकड़ियों के बहुत विशाल ढेर के चारों ओर आग लगा दी गयी । उस समय भगवान् की इच्छा से बड़े जोर से आँधी आ गयी । भीषण वायु का झोंका आया और उसने होलिका के द्वारा ओढ़ी हुई चुनरी को उड़ाकर उसे प्रह्लाद के ऊपर ओढ़ा दिया । चुनरी के उड़ जाने से होलिका बुरी तरह से जलने लगी । वह चिल्लाने लगी – 'मुझे बचाओ, बचाओ ।' किन्तु वह भीषण लकड़ियों के ढेर के भीतर प्रज्वलित अग्नि के भीतर थी । इसलिए कोई उसे जलते हुए और चिल्लाते हुए नहीं देख सका । होलिका भक्तापराध के कारण आग में जल गयी किन्तु प्रह्लाद की भगवान् ने रक्षा की । वे आग में नहीं जल सके । इसलिए भगवान् के भक्त से कभी भी वैर नहीं करना चाहिए ।

विष्णुपुराण के अनुसार हिरण्यकशिपु ने दैत्यों से कहा – 'इस लड़के को आग में जला दो ।' अपने स्वामी की आज्ञा सुनकर सभी दैत्य प्रह्लादजी को जलाने के लिए ले गये । लाखों मन लकड़ी इकट्ठा की गयी और उस पर प्रह्लादजी को बैठाया गया । प्रह्लाद की एक बुआ थी, उसका नाम होलिका था; उसने भी अपने भाई हिरण्यकशिपु के साथ तपस्या की थी । ब्रह्माजी ने उसको वर देते समय एक कपड़ा दिया था और कहा था – 'यह कपड़ा ले ले । यह कभी भी आग में नहीं जल सकता है । कभी भी नष्ट नहीं होगा ।' जब हिरण्यकशिपु प्रह्लाद को मारने के सारे प्रयत्न करके असफल हो गया, घोर निराश हो गया । उस समय होलिका ने अपने भाई से कहा – 'भइया ! तुम चिन्ता क्यों करते हो ? इस लड़के को तो मैं मार डालूँगी ।' हिरण्यकशिपु ने पूछा – 'बहन ! यह कैसे मरेगा ?' होलिका बोली – 'मेरे पास ब्रह्माजी का दिया हुआ यह वस्त्र है । यह आग में नहीं जल सकता है । मैं इस वस्त्र को ओढ़कर प्रह्लाद को लेकर लकड़ियों के ढेर पर बैठ जाऊँगी । तुम आग लगवा देना । प्रह्लाद जलकर मर जायेगा और मैं जीवित बनी रहूँगी ।' हिरण्यकशिपु प्रसन्न होकर बोला – 'ठीक बात है । अब प्रह्लाद अवश्य ही मरेगा । यह अस्त्र से नहीं मरा, शस्त्र से नहीं मरा, समुद्र में डुबाने से नहीं मरा, पर्वत से गिराने पर नहीं मरा, जहर पिलाने से नहीं मरा किन्तु अब तो जरूर मरेगा क्योंकि मेरी बहन इसको गोद में बिठाकर कसकर पकड़ लेगी और आग में बैठ जायेगी । उस समय प्रह्लाद भाग नहीं पायेगा ।' हिरण्यकशिपु के आदेश से हजारों मन लकडियाँ एकत्रित की गयीं । लकड़ियों के विशाल ढेर पर होलिका प्रह्लाद को गोद में लेकर बैठ गयी । स्वयं तो उसने अपने शरीर पर ब्रह्मा का दिया हुआ वस्त्र ओढ़ लिया और प्रह्लाद को गोद में लेकर प्यार करने लगी और कहने लगी – 'अरे प्रह्लाद बेटा ! मेरी गोद में बैठ जा । तू तो बड़ा ही प्यारा लड़का है ।' ऐसा कहकर उसने प्रह्लाद को पकड़ लिया कि कहीं भाग न जाए और दैत्यों को आग लगाने का इशारा कर दिया । जैसे ही आग लगाई गयी, उसी समय भगवान् की इच्छा से आँधी चलने लगी । इतनी जोर की आँधी चली कि होलिका द्वारा ओढ़ा हुआ कपड़ा उड़ गया और उड़कर प्रह्लाद से लिपट गया । अब तो होलिका बुआ जलने लगी तो चिल्लाने लगी – 'अरे मुझे बचाओ । मैं जल रही हूँ, कोई मुझे बचाओ ।' लाखों मन लकड़ियों में लगी आग के भीतर वह बैठी थी, इतनी प्रचण्ड अग्नि में कोई

उसकी आवाज नहीं सुन सका । होलिका उस आग में पूरी तरह जलकर राख हो गयी । हिरण्यकशिपु ने बाद में देखा कि मेरी बहन तो जल गयी किन्तु प्रह्लाद तो जला नहीं, यह तो कीर्तन कर रहा है, नाच रहा है । हिरण्यकशिपु ने पूछा – 'प्रह्लाद ! तू जला नहीं ?' प्रह्लादजी बोले –

'तातैष वह्निः पवनेरितोऽपि न मां दहत्यत्र समन्ततोऽहम् ।'

'यह अग्नि मुझे जला नहीं रही है । वस्तुतः यह आग है ही नहीं ।' बाकी सभी लोगों को दिख रहा था कि आग की लपटें आकाश तक जा रही हैं । हिरण्यकशिपु ने पूछा – 'फिर यह क्या है ?' प्रह्लाद ने कहा –

'पश्यामि पद्मास्तरणास्तृतानि शीतानि सर्वाणि दिशाम्मुखानि ।' (श्रीविष्णुपुराण १/१७/४७)

मैं तो आग में नहीं बैठा हूँ । यहाँ तो मेरे चारों ओर कमल की पंखुड़ियों की शय्या है । बड़ी ही ठण्ड है । कमल का पलंग है, कमल का तकिया है । कमल के गद्दे हैं, जो बड़े ही ठण्डे हैं । बड़ा आनन्द आ रहा है । मुझे तो ऐसा अनुभव हो रहा है ।

प्रह्लाद के विश्वास से आग कमल बन गयी, कमल की पंखुड़ियाँ बन गयीं । इसलिए भगवान् के भक्त को केवल भगवान् और उनके भजन पर विश्वास रखना चाहिए । ऐसा करने पर दुःख भी सुख बन जाएगा ।

निष्किल्बिष महाभागवत की लीला

(नित्य गोलोक धाम में श्रीप्रह्लादलीला का कथन-श्रवण)

(रंग भरी होरी का महारास हो रहा है । सखियों के मध्य में श्यामसुन्दर वंशी बजाते हुए त्रिभंग गति से खड़े हुए हैं ।)

री ठाड़ो नन्द दुलारो, जाही पै डारयो क्यों न रंग ।
गिरि को उठाय भये गिरधारी, इन्द्र मान कियो भंग ।
गौतम नारी अहिल्या तारी, कुब्जा को कियौ संग ।
री प्रह्लाद उबारो, जाही पै डारयो क्यों न रंग ॥

(महारास में अचानक श्यामसुन्दर अत्यन्त भाव विह्वल होकर गम्भीर चिन्तन करते हुए बैठ जाते हैं, वंशी हाथ से गिर जाती है, पीताम्बर भी खिसक जाता है ।)

ललिताजी – अरे श्यामसुन्दर ! अचानक का ह्वै गयौ ? (आश्चर्यपूर्वक पूछती हैं)

श्रीजी – हे प्यारे ! या रंग भरे सरस महोत्सव में आप कूँ ऐसे उदासीन मुद्रान में दीखवौ ठीक न लगै ।

विशाखाजी – हे प्राणवल्लभ ! महारास में चिन्तित, नीरस होवौ अति आश्चर्य है ।

कृष्ण – हे प्यारी सखियो ! मोकूँ एक परम दुलारे भक्त की स्मृति ने भाव विह्वल कर दियौ ।

श्रीजी – हे दयित ! ऐसौ कौन सौ विशेष भक्त है ?

कृष्ण – हे प्रिया जू ! वो मेरौ प्यारौ भक्त है – 'प्रह्लाद', जाकी याद मोकूँ सता रही है । मैं अति आकुल व अधीर हो गयो हूँ वाके दर्शन स्पर्श करवै कूँ ।

ललिताजी – हे रसिकवर ! ऐसे कौन से आकर्षित करवै वाले रहस्य छिपे हुए वा भक्त में ?

कृष्ण – हे ललिते ! ये एक ऐसौ अद्भुत भगत है, जानै गर्भ में ही भाव भरी भक्ति कूँ सीख लियौ ?

विशाखाजी – हे रसशेखर ! अब तो हम सब सखियन के मन में वा रहस्यमय भगत के बारे में और अधिक जानवे की जिज्ञासा बढती जा रही है ।

कृष्ण – हे सखिजनों ! रंगीली-रसीली होली की उद्गम भूमि बरसाना व ब्रजमण्डल तो है ही परन्तु होरी के रसोत्सव में मेरे बाल भगत प्रह्लाद कौ इतिहास भी विशेष रूप से स्मरणीय है ।

ललिताजी – हे श्यामसुन्दर ! अब तो या कथा कूँ अच्छी तरह से समझाओ ?

कृष्ण – हे रसिक देवियो ! एक बार सभी ब्रजवासियों ने मोसों प्रह्लाद लीला देखवे की लालसा करी, तब मैंने फालैन गाँव में या लीला कौ सबन कूँ दर्शन करायौ ।

(तभी ठाकुरजी नाच-गाकर अभिनय करते हुए प्रह्लाद लीला का गान करते हैं)

तर्ज – 'नाना भाँति नचायौ भक्तन ने मोकूँ । लोक लाज तजि जिन्हहिं काज मैंने वैकुण्ठहु बिसरायो ॥'

भाव भगति ने बँधायौ, भगतन की मोकूँ । बाल भगत प्रह्लाद के काजे, नियम धरम बिसरायौ ॥

मुनि नारद हैं आये, माँ कयाधू को बचाये, ज्ञान गर्भ में कराये, भयौ आनन्द अपार ।

प्रह्लाद भक्ति करी, बहु विपदा परी, जाय रक्षा करी, असुर गये सब हार ॥

बढ़यौ पाप अति दियौ दुःसह दुःख, नरसिंह रूप बनायौ ।

रसीली भक्ति 'संगीतमयी आराधना'

वसन्त पञ्चमी (३ फरवरी, २०२५) के शुभ अवसर पर श्रीमान मन्दिर परिसर में श्रीबाबामहाराज के करकमलों के द्वारा 'श्रीजी संगीत, विद्यालय' का उद्घाटन किया गया । इस अवसर पर प्रख्यात फिल्म अभिनेत्री, नृत्यांगना और मथुरा जिले की सांसद श्रीमती हेमा मालिनी पधारीं तथा अन्य भी गणमान्य जन उपस्थित थे । संध्या काल में रस मण्डप भवन में देश से पधारे शास्त्रीय संगीत के कुशल कलाकारों के द्वारा गायन, वाद्य और नृत्य के मधुर कार्यक्रमों की प्रस्तुति दी गयी । रस कुञ्ज भवन में ही 'श्रीजी संगीत विद्यालय' की स्थापना की गई है । जिसमें शास्त्रीय संगीत के विधिवत् प्रशिक्षण के लिए पाँच अत्याधुनिक भव्य साउंड प्रूफ कमरों का निर्माण किया गया है । भारतीय शास्त्रीय संगीत के कुशल संगीतज्ञों द्वारा यहाँ संगीत के विद्यार्थियों को गायन, वाद्य और नृत्य का प्रशिक्षण दिया जाएगा । आजकल के विज्ञान के युग में ऑन लाइन प्रशिक्षण का बहुत प्रचलन हो गया है । इससे सुदूर क्षेत्र में रहने वाले अध्यापक अपने विद्यार्थियों को अनेक प्रकार की विद्याओं में पारंगत करते रहते हैं । यह सुविधा 'श्रीजी संगीत विद्यालय' में भी उपलब्ध है । सुदूर क्षेत्रों के शास्त्रीय संगीत के गुरुजन ऑनलाइन क्लास के माध्यम से अपने विद्यार्थियों को संगीत की प्रत्येक विधा से परिचित कराया करेंगे । इसके लिए 'श्रीजी संगीत विद्यालय' के नव निर्मित कमरों में बड़ी टी.वी. स्क्रीन और कैमरों की व्यवस्था की गई है । समय-समय पर गुरुजन व्यक्तिगत रूप से भी उपस्थित होकर विद्यार्थियों को शास्त्रीय संगीत की कला से लाभान्वित किया करेंगे । संगीत-शिक्षा में विद्यार्थियों की परीक्षा भी हुआ करेगी । संगीत की परीक्षाओं में सफल होने वाले विद्यार्थियों को संगीत की उपाधि (डिग्री) से भी सम्मानित किया जाएगा । इस संगीत विद्यालय में भारतीय शास्त्रीय संगीत के लगभग सभी वाद्य यंत्रों का प्रशिक्षण दिया जाएगा । काल की विकरालता के कारण प्राचीन भारत के बहुत-से वाद्य लुप्त भी हो गये हैं, उनके प्रक्षिक्षण की भी सुविधा इस विद्यालय में प्रदान की जाएगी, जैसे कि एक प्राचीन वाद्य का नाम है 'रावण हत्था', जिसे भगवान् शिव की उपासना के लिए रावण भी बजाया करता था । रावण एक बहुत बड़ा विद्वान होने के साथ ही बहुत ही कुशल संगीतज्ञ भी था । उसका अत्यन्त प्रिय वाद्य रावण हत्था, जो कि अब लगभग विलुप्तप्राय ही हो गया है, उसके प्रशिक्षण की भी सुविधा संगीत के विद्यार्थियों को इस विद्यालय में प्रदान की जाएगी । श्रीबाबामहाराज की यह प्रबल अभिलाषा है कि जब यह 'संगीत विद्यालय' भविष्य में उन्नति को प्राप्त होगा तो संगीत के जिज्ञासुओं की संख्या में वृद्धि के दृष्टिगत् एक 'संगीत विश्व विद्यालय' की भी 'श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान' के द्वारा बरसाना में स्थापना की जाएगी । वर्तमानकाल में भारतवर्ष में शास्त्रीय संगीत की शिक्षा के लिए अनेकों विद्यालय हैं किन्तु अभी भी दुनिया में शास्त्रीय संगीत का विश्वविद्यालय कहीं नहीं है । स्वयं श्रीबाबा महाराज शास्त्रीय संगीत के एक बहुत ही कुशल कलाकार और मर्मज्ञ हैं । उन्होंने अपनी जन्मभूमि तीर्थराज प्रयाग में अल्पायु में ही भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रसिद्ध विद्यालय 'प्रयाग संगीत समिति' से प्रभाकर तक संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी । उस समय के देश के विश्वविख्यात संगीत सम्राट

विष्णु दिगम्बरजी के सुपुत्र श्री डी.वी.पलुस्कर जी के गायन में प्रयाग संगीत समिति के एक कार्यक्रम में श्रीबाबामहाराज ने संगत की थी । वे श्रीबाबा की प्रतिभा से बहुत अधिक प्रभावित हुए और शास्त्रीय संगीत के अत्यधिक उन्नत प्रशिक्षण के लिए उन्हें अपने साथ बम्बई ले जाना चाहते थे किन्तु माताजी की अनुमति न मिलने के कारण श्रीबाबा उनके साथ नहीं जा सके । श्रीबाबा को प्रयाग संगीत समिति में उनकी कुशल संगीत दक्षता के कारण स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया था । आगे चलकर तो श्रीबाबा संसार से विरक्त होकर १७ वर्ष की ही अल्पायु में प्रेम और संगीत की स्वाभाविक पाठशाला ब्रज-वसुन्धरा में चले आये और श्रीजी की लीलाभूमि बरसाना में स्थायी वास करते हुए उन्होंने संगीत को ही उनकी आराधना का प्रमुख माध्यम बना लिया । श्रीबाबा लौकिक जगत से पूर्णतया उदासीन होकर संगीत का यथार्थ लाभ लेते हुए इसे ईश्वर-आराधना में प्रयुक्त करके अपने इष्ट श्रीराधामाधव को रिझाने में लग गये । उन्होंने मान मन्दिर में आने वाले ब्रजवासियों, साधुओं-साध्वियों एवं देश के बहुत-से संगीत के जिज्ञासुओं को संगीत में दक्ष बनाते हुए संगीत के माध्यम से भक्ति का व्यापक प्रचार किया । श्रीबाबा ने श्रीराधामाधव के गुणगान के लिए शास्त्रीय संगीत पर आधारित बहुत से पदों की रचना की तथा युगल मन्त्र के कीर्तन के लिए शास्त्रीय संगीत के रागों पर आधारित अनेकों भक्तिप्रदायिनी धुनों की रचना की है ।

श्रीबाबामहाराज का बहुत दिनों से ही संकल्प था कि मानमन्दिर में संगीत विद्यालय की स्थापना की जाए क्योंकि ब्रज के इष्ट श्रीराधामाधव की उपासना में संगीत का बहुत अधिक महत्त्व है । संगीत तीन चीजों से मिलकर बनता है – **'गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते ।'** – गीत, वाद्य और नृत्य की त्रिवेणी ही 'संगीत' है । श्रीराधामाधव की रसमयी आराधना में संगीत की इन तीनों विधाओं का प्रयोग होता है । स्वयं उनकी लीला में ही संगीत का पग-पग पर उपयोग होता है जैसे कि श्रीराधामाधव स्वयं ही बहुत कुशल गायक हैं । साथ ही वाद्य बजाने में भी वे अत्यधिक कुशल हैं । इस बात को तो सारा संसार ही जानता है कि ब्रज के श्रीकृष्ण की पहचान उनकी त्रिभुवनमोहन मुरली ही है । स्वयं ब्रज के रसिकजन उनकी पहचान बताते हुए कहते हैं – **'हमारो मुरली वारो श्याम ।'** ब्रज के रसिक कहते हैं कि हमारे श्यामसुन्दर तो वही हैं जो वंशी बजाते हैं, बाकी जो मथुरा और द्वारका के शंख-चक्रधारी श्रीकृष्ण हैं, हमें उनसे कोई प्रयोजन नहीं है । श्रीकृष्ण की वंशी अपनी मधुर तान से ब्रह्माण्ड के समस्त चर-अचर जीवों के मन को मोहित कर लेती है । इसी प्रकार श्रीराधारानी मधुमती वीणा बजाती हैं । उनके तो अंगों के आभूषणों से ही संगीत की मधुर ध्वनि होती है । उनके नूपुर, किंकणी और कंकण (कंगन) की ध्वनि से अत्यधिक मधुर संगीत की उत्पत्ति होती है । श्रीजी की सखियाँ-सहचरियों के बारे में हित हरिवंश महाप्रभु कहते हैं – **'एक ते एक संगीत की स्वामिनी ।'** श्रीजी की प्रत्येक सखी संगीत कला की स्वामिनी हैं । कोटि-कोटि सरस्वती भी श्रीजी की सखियों की संगीत कला के आगे नगण्य हैं । ब्रह्मसंहिता के अनुसार तो ब्रजभूमि का दिव्य स्वरूप ही संगीतमय है । यहाँ की सहज बोली ही गान है तथा यहाँ की चाल ही नृत्य है । यहाँ के कण-कण में संगीत की धारा प्रवाहित होती रहती है । कलियुग में श्रीकृष्ण की भक्ति के प्रचारक जो भी महापुरुष उत्पन्न हुए उन सभी ने संगीत के माध्यम से श्यामसुन्दर की आराधना की । जैसे बंगाल में श्रीचैतन्य महाप्रभु उत्पन्न हुए, उन्होंने सम्पूर्ण भारत में संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार-प्रसार किया । श्रीगौरांग महाप्रभु संकीर्तन में बहुत ही सुन्दर नृत्य किया करते थे । जगन्नाथजी की रथ यात्रा में जब वे अपने परिकरों के साथ संकीर्तन करते हुए नृत्य करते थे तो उनका अद्भुत नृत्य देखने के लिए स्वयं जगन्नाथजी का रथ रुक जाता था । इसी प्रकार राजस्थान में प्रकट हुई प्रेम दिवानी भक्तिमती मीराबाई को कौन नहीं जानता है ? वे अपने एक पद में कहती हैं कि मैंने अपने श्रीगिरधर गोपाल से रसीली भक्ति माँगी थी और उन्होंने मुझे वह प्रदान कर दी । **'मीरा गिरधर लाल सों भगति रसीली जाँची ।'** उस रसीली भक्ति का क्या परिणाम हुआ तो मीरा कहती हैं – **'गाय गाय गिरधर के गुण निशदिन, काल व्याल सों बाँची ॥'** दिन-रात गिरधर का गुणगान करने के कारण संसार को भक्षण करने वाले काल रूपी सर्प से मैं बच गयी हूँ । मीराजी ने अपने गिरधर गोपल को रिझाने के लिए गान और नृत्य की रसीली भक्ति का चयन किया और चित्तौड़ की महारानी होने पर भी लोक लज्जा

के बन्धनों, राज परिवार की कुल-मर्यादा की कठिन बेड़ियों को उन्होंने पूरी तरह तोड़ दिया एवं अति निडर, अत्यधिक निरंकुश होकर वे दिन-रात अपने इष्ट के प्रेम में गान और नृत्य की साधना में लगी रहती थीं । इसका यह परिणाम हुआ कि उनका ससुराल पक्ष, सम्पूर्ण राजपूत कुल उनके विरुद्ध हो गया । उन्होंने मीराजी को नियन्त्रित करने का प्रयास किया परन्तु वे नहीं रुकीं, उन्होंने पूरी तरह बेपरवाह होकर कह दिया – **'राणाजी मैं तो गोविन्द का गुण गास्यां । राजा रूठे नगरी रूठे हरि रूठे कहाँ जाँस्या ॥'** एक पद में उन्होंने कहा – **'मैं तो कृष्ण कन्हैया गायो करूँ । जहाँ-जहाँ पग धरूँ धरती पर, तहाँ-तहाँ मैं नाच्यो करूँ ॥'** मैं तो दिन-रात कृष्ण कन्हैया के गुण गाती रहती हूँ और मैं पृथ्वी पर जहाँ भी पाँव रखती हूँ, वहाँ मैं तो सदा नृत्य ही करती रहती हूँ । दिन-रात के गुण गान और नृत्य आराधना के कारण मीरा को काल स्पर्श नहीं कर पाया । अन्तिम समय वे द्वारका चली गयीं और अपने प्रियतम के गुण गाते हुए वे उन्हीं के श्री विग्रह में लीन हो गयीं । मीराजी की रसीली भक्ति आज तक हम सभी का मार्ग प्रशस्त कर रही है कि संगीत के माध्यम से की जाने वाली ईश्वर आराधना को संसार की कोई भी शक्ति नहीं रोक सकती, यहाँ तक कि काल भी संगीत के माध्यम से उपासना करने वाले का कुछ नहीं बिगाड़ सकता । इसी प्रकार महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य जी और उनके सुपुत्र गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी ने भी गोवर्धन में श्रीनाथजी की उपासना के लिए कीर्तन करने के लिए अष्ट छाप के महापुरुषों की नियुक्ति की, जो पद रचना करके दिन-रात संगीत के माध्यम से श्रीराधामाधव को रिझाया करते थे । इनमें श्रीसूरदासजी, श्रीकुम्भनदासजी, श्रीपरमानन्ददासजी और श्रीकृष्णदासजी तो महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के शिष्य थे तथा श्रीगोविन्दस्वामी, श्रीछीत स्वामी, श्रीनन्ददासजी और श्रीचतुर्भुजदासजी गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी के शिष्य थे । आज भी वल्लभ सम्प्रदाय के मन्दिरों में ऐसी परम्परा है कि ठाकुरजी को भोग पीछे अर्पित किया जाता है, उसके पहले राग के माध्यम से गायन किया जाता है क्योंकि ठाकुरजी जब राग सुनते हैं तब उनको भोग ग्रहण करने में आनन्द का अनुभव होता है । इसलिए पुष्टि सम्प्रदाय के मन्दिरों की व्यवस्था है पहले राग, पीछे भोग । इसी प्रकार ललिता सखी के अवतार स्वामी हरिदासजी भी शास्त्रीय संगीत के माध्यम से अपने इष्ट श्री श्यामा-श्याम को रिझाया करते थे । उनके बारे में गोस्वामी नाभाजी ने भक्तमाल में लिखा है – **'गान कला गन्धर्व श्याम श्यामा को तोषैं ।'** स्वामी हरिदासजी की गान कला के समक्ष देवलोक के गायक गन्धर्व आदि तो एक कला मात्र ही थे । वस्तुतः तो गन्धर्व स्वामी हरिदासजी के संगीत के आगे कुछ भी नहीं थे क्योंकि स्वामी जी ललिता सखी के अवतार हैं जो श्रीजी के निकुंज धाम के गायक हैं और ये गन्धर्व तो स्वर्ग में इन्द्र को रिझाने वाले भोग प्रधान अशुद्ध संगीत के गायक हैं ।

संगीत की दो धाराएँ हैं – उलटी धारा और सीधी धारा । सीधी धारा तो वह है जिसके माध्यम से एक उपासक अपने इष्ट को प्रसन्न करने के लिए संगीत के माध्यम से उपासना करता है । उलटी धारा वह है जिसमें व्यक्ति लोक रंजन के उद्देश्य से धन और कीर्ति के माध्यम से एक प्रकार से संगीत कला का दुरुपयोग करता है । श्रीबाबामहाराज जब प्रयाग संगीत समिति में संगीत का अध्ययन किया करते थे तो वहाँ दीवाल पर सरस्वती देवी का एक विशाल चित्र अंकित था, उसमें सरस्वती देवी के चार हाथ थे । श्रीबाबा के संगीत के गुरुजी कहा करते थे कि देखो, देवी सरस्वती के चार हाथ हैं, जिसमें उनके एक हाथ में पुस्तक है, एक हाथ में जप माला है किन्तु अपने दोनों हाथों से वे वीणा को धारण किये हुए हैं । इसका अभिप्राय यह है कि भले ही कोई शास्त्रों का अच्छी प्रकार से अध्ययन कर ले, माला के द्वारा भजन कर ले किन्तु जब तक वह संगीत के माध्यम से प्रभु की आराधना नहीं करता, तब तक उसका शास्त्र-अध्ययन, माला के द्वारा किया गया जप आदि साधन अधूरा ही रहता है । इसलिए व्यक्ति के जीवन में संगीत के माध्यम से ईश्वर की आराधना करने की अत्यधिक आवश्यकता है और इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु श्रीबाबा के द्वारा 'श्रीजी संगीत विद्यालय' की स्थापना की गयी है ।

श्रीराधिका की कृष्णाराधना

श्रीगह्वरवनकुञ्जमन्दिरगता योगीन्द्रवद् यत्पदज्योतिर्ध्यानपरा सदा जपति यं प्रेमाश्रुपूर्णा सुश्रीः ।
केनाप्यद्भुतमुल्लसद्रतिरसानन्देन सम्मोहितः सः कृष्णेति सदा हृदि स्फुरतु मे विद्या परा द्व्यक्षरः ॥ (बाबाश्री विरचित)

श्रीकृष्ण की राधा-आराधना

कालिन्दीतटकुञ्जमन्दिरगतो योगीन्द्रवद् यत्पदज्योतिर्ध्यानपरः सदा जपति यां प्रेमाश्रुपूर्णो हरिः ।
केनाप्यद्भुतमुल्लसद्रतिरसानन्देन सम्मोहितः सा राधेति सदा हृदि स्फुरतु मे विद्या परा द्व्यक्षरा ॥ (श्रीराधासुधानिधि – ९५)

‘श्रीजी संगीत विद्यालय’ के उद्घाटन समारोह में बाल विद्यार्थियों ने किया गायन

(१) रसिया-तर्ज – ‘हरी प्यारे की वंशी बजत आवै ।
प्यारी श्रीराधाजू नचत आवै ॥’

संगीत सरस धारा आवै । सखि श्यामाश्याम नचत आवैं ॥
नृत्य-गान जहाँ नित ही होवै,
सहज भाव भक्ति आवै । सखि श्यामाश्याम नचत आवैं ॥
आराधन से युगल रीझते,
सहजहि रस में बहत आवैं । सखि श्यामाश्याम नचत आवैं ॥
श्रीसहचरि गोपीजन गावैं,
श्रीप्रेमभाव डूबत आवैं । सखि श्यामाश्याम नचत आवैं ॥
दिव्य देवियाँ नाचैं-गावैं,
सारद बीन बजा आवैं । सखि श्यामाश्याम नचत आवैं ॥
शिव सनकादिक नारद नाचैं,
ब्रह्माजी से भाव आवै । सखि श्यामाश्याम नचत आवैं ॥
महारास में अति आवश्यक,
बिन संगीत न रस आवै । सखि श्यामाश्याम नचत आवैं ॥
युगों-युगों में रस की महिमा,
कलि विशेष मंगल आवै । सखि श्यामाश्याम नचत आवैं ॥
मीरा, नरसी, श्रीहरिदास;
रसिकन भाव यही आवै । सखि श्यामाश्याम नचत आवैं ॥
अधम पतित को सरस है साधन,
सुनतहि भक्ति-उमंग आवै । सखि श्यामाश्याम नचत आवैं ॥
ब्रज-संस्कृति कौ प्राणाधार,
ब्रज कौ रूप लौट आवै । सखि श्यामाश्याम नचत आवैं ॥
बाबाश्री से ब्रज-आराधन,
संगीत भाव जन-जन आवै । सखि श्यामाश्याम नचत आवैं ॥
शुभारम्भ है श्रीसंगीत कौ,
आराधन में चमक आवै । सखि श्यामाश्याम नचत आवैं ॥
संगीत-विद्या होगी अनुपम,
संकल्प संत कौ काम आवै । सखि श्यामाश्याम नचत आवैं ॥

(२) रसिया तर्ज – ब्रज में फिर प्रेम भरी प्यारी, मुरली की तान सुना देना ।

ब्रज में अब प्रेम भरी प्यारी संगीत की तान सुना देना ।
हे युगल जोरी राधामाधव ! अति मधुर दरस दिखला देना ॥
श्रीब्रजमण्डल रसमय दरसे,
संगीत-प्रेम जन-जन सरसे,
संगीत सरस आराधन में, रस भरा प्रेम बरसा देना ।
नृत्य-गान रसमय तानन,
आराधक जन छोड़ें बन्धन,
है सहज प्रेममय स्वर घुँघरू, गहवरवन रास रचा लेना ।
बरसाने बने निराली छटा,
नित ही बरसे श्रीश्याम घटा,
संकल्प सत्य बाबाश्री का, श्रीरसमय भाव बहा देना ।
संगीत-प्रेम में ब्रज जागे,
तब महामोह माया भागे,
विद्यालय श्रीसंगीत बना, जन-जन को जाग्रत कर देना ।
है मंगलमय संगीत आराधन,
हो जड़-चेतन पावन तन-मन,
महिमा संगीत सच्ची बतला, फिर ब्रजस्वरूप दरसा देना ।
श्रीजी की प्रेरणा है सच्ची,
रहे न कमी कोई कच्ची,
अद्भुत-अनुपम संगीत-कला, गहवर-गौरव दिखला देना ।

श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान द्वारा संचालित

श्रीजी संगीत विद्यालय

'गह्वरवन, बरसाना' उत्तर प्रदेश – 284105

प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं तदनुसार शिक्षा मानवमात्र को असत् से सत्, अंधकार से प्रकाश और मृत्यु से अमृतत्त्व की ओर ले जाती रही है । इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ने श्रीराधारानी की अहैतुकी कृपा एवं परम् विरक्त संत पद्मश्री सम्मानित श्रीरमेशबाबाजीमहाराज के आशीर्वाद से नव प्रकल्प **'श्रीजी संगीत विद्यालय'** की स्थापना की है । यह एक ऐसा अद्वितीय संगीत शिक्षा-केंद्र स्थापित हुआ है जो प्राकृतिक वातावरण के साथ पुरातन भारतीय शिक्षा-प्रणाली के आधार पर विद्यार्थियों के बहुमुखी व्यक्तित्व के विकास में सहायक होगा ।

'श्रीजी संगीत विद्यालय' नि:स्वार्थ भाव से सदा आपकी सेवा में तत्पर है एवं आशा करता है कि आप भी इस सेवा-प्रकल्प से जुड़कर भारतीय संस्कृति के इस सरस भक्तिमय अनुष्ठान में परम मंगलकारिता के भागी बनें ।

नियमावली

१ - छात्र-छात्रा को प्रवेश लेते समय माता-पिता अथवा अभिभावक की हस्ताक्षर सहित स्वीकृति आवश्यक होगी और इस वचनबद्धता का पालन करना होगा कि जब तक उसका पाठ्यक्रम पूर्ण नहीं हो जाता, वह कक्षा नहीं छोड़ेगा/छोड़ेगी ।

२ - श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान से जुड़े विशेष कार्यक्रमों के लिए सभी विद्यार्थियों को एकसाथ अवकाश न देकर एक निर्धारित समय के लिए उनको जाने की अनुमति दी जाएगी ताकि संस्थान का भी कोई कार्य बाधित न हो और छात्र-छात्राओं की शिक्षा भी ।

३ - अन्य किसी भी धार्मिक आयोजन आदि में जाने के लिए भी अनुमति लेना आवश्यक होगा ।

४ - छात्र-छात्रा को गुरुजन के निर्देशानुसार नियमित रूप से (प्रतिदिन) समुचित अभ्यास करना आवश्यक होगा ।

५ - परीक्षा देने, विशेष प्रतियोगिता अथवा अन्य आवश्यक कार्यक्रम में प्रस्तुति हेतु जाना अनिवार्य होगा ।

६ - प्रत्येक छात्र-छात्रा को आश्रम के नियमित सत्संग-कीर्तन में उपस्थित रहना अनिवार्य होगा ।

७ - नियमित रूप से उपस्थिति अनिवार्य होगी । विशेष परिस्थिति में एक माह में अधिकतम दो कक्षाओं तक में अनुपस्थित रह सकता/सकती है ।

८ - आश्रम के आवासीय छात्र-छात्राओं से कोई भी शुल्क नहीं लिया जाएगा, चाहे वे ऑनलाइन कक्षाएं लें अथवा ऑफलाइन ।

९ - बाहर से आने वाले छात्र-छात्राओं को नियमानुसार उचित मासिक-शुल्क अदा करना होगा, चाहे वे ऑफलाइन कक्षाएं लें अथवा ऑनलाइन ।

* प्रवेश हेतु आवश्यक नियम *

१ - संस्था में प्रवेश के लिए किसी भी छात्र/छात्रा का सनातन धर्म और सनातन संस्कृति के प्रति अटूट निष्ठावान और आस्थावान होना अति आवश्यक है ।

२ - सनातन धर्म, जिसे हिन्दू धर्म के रूप में आमतौर पर जाना जाता है, उसका दायरा कोई संकुचित नहीं है, बल्कि बहुत विस्तृत है । वास्तव में यह एक विचार है जो केवल और केवल चराचर विश्व के कल्याण की कामना करते हुए 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' की भावना से ओतप्रोत है । अतः हमारे छात्र-छात्राओं की भी जब ऐसी ही सोच होगी, तभी हम संगीत कला के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति कर सकेंगे ।

३ - हमारे छात्र-छात्राओं के लिए संस्था द्वारा जो भी परिधान (यूनिफॉर्म) सुनिश्चित की जाएगी, उसका पालन कक्षा में प्रवेश के लिए नितान्त अनिवार्य होगा ।

४ - संगीत की कक्षा में आने के लिए निर्धारित समय पर ही छात्र-छात्रा को कक्ष में प्रवेश करना होगा । इसका कड़ाई से पालन अनिवार्य रूप से करना होगा ।

५ - कक्षा में जो कुछ भी सिखाया जाए अथवा पढ़ाया जाए, उसका उसी दिन अथवा अगली कक्षा में आने से पूर्व उचित अभ्यास करके अथवा याद करके आना आवश्यक है ।

६ - 'संगीत-साधना' ईश्वर की पूजा-आराधना का सबसे सरल और सुगम मार्ग है । संगीत के वाद्य-यंत्रों को प्रयोग में लाने से पूर्व उनके प्रति ठाकुरजी के विग्रह की भाँति ही भाव रखना आवश्यक है; उनको भी जागृत देवता की भाँति ही सम्मान देते हुए उनके समुचित रख-रखाव की जिम्मेदारी भी छात्र-छात्राओं की ही होगी । कक्षा प्रारम्भ होने से पूर्व जहाँ से भी जो भी वाद्य लें, कक्षा की समाप्ति पर उसे वहीं रखकर जाने का दायित्त्व भी छात्र-छात्राओं का ही होगा ।

७ - ग्रंथों अथवा पुस्तकों के प्रति भी साक्षात् प्रभु के विग्रह जैसी भावना रखते हुए उनकी सुरक्षा की जिम्मेदारी भी छात्र-छात्राओं की ही होगी ।

८ - कक्षा की समाप्ति पर कक्ष की लाइट, पंखे, कूलर अथवा एसी आदि को बन्द करने की जिम्मेदारी भी अन्त में कक्ष छोड़ने वाले शिक्षार्थी की ही होगी । यह हर विद्यार्थी का कर्त्तव्य है और इसका सभी ध्यान से पालन करें ।

९ - छात्र-छात्राओं को श्रीमानमंदिर, श्रीराधारस मंदिर, श्रीरसमण्डप और श्रीमाताजी गौशाला जैसे किसी भी उपक्रम में विशिष्ट अवसरों पर कार्यक्रम हेतु यदि तैयारी कराई जाती है तो उनको अनिवार्यत: भाग लेना ही होगा ।

१० - छात्र-छात्राओं को संगीत की परीक्षाएँ भी देना अनिवार्य होगा । इस हेतु उनको शास्त्र-ज्ञान भी कराया जाएगा । लिखित परीक्षा में नकल आदि करते हुए पकड़े जाने पर सख्त कार्यवाही की जाएगी । ऐसे छात्र-छात्राओं को कक्षा से निष्कासित भी किया जा सकता है ।

११ - प्राचार्य अथवा गुरुजन के निर्देश की अवहेलना करने वाले छात्र-छात्रा के साथ दण्डात्मक कार्यवाही भी की जा सकती है; इसका सभी ध्यान रखें ।

शास्त्रीय संगीत-मार्गदर्शक विभूतियाँ

पं. विष्णुनारायण भातखंडेजी

पण्डित विष्णुनारायण भातखंडेजी का जन्म बम्बई (मुम्बई) के बालकेश्वर नामक ग्राम के उच्च ब्राह्मण कुल में १० अगस्त, १८६० ई. को हुआ था । इनके माता-पिता संगीत के विशेष प्रेमी थे, अतः बाल्यकाल से ही पण्डित जी को गाने का शौक पैदा हो गया । आप अपनी माता के श्रीमुख से जो गीत सुनते थे, उसे उसी प्रकार नक़ल करके गा देते थे । इतने छोटे बालक की संगीत में विशेष रुचि देखकर इनके माता-पिता को अनुभव हुआ कि बालक को संगीत की ईश्वरीय देन है । जिस विद्यालय में पण्डितजी शिक्षा पाते थे, उसमें उन्होंने अपने गीत-संगीत द्वारा सबको आकर्षित कर लिया था । विद्यालय के विशेष अवसरों पर वे गाना गाकर पुरस्कार भी प्राप्त करते थे । संगीत सम्मेलनों, नाटकों और अन्य उत्सवों में भी आप भाग लेने लगे परन्तु अपनी स्कूली पढ़ाई में आपने कोई बाधा नहीं आने दी । इस प्रकार स्कूल तथा कॉलेज की शिक्षा जारी रखते हुए आपने संगीत का भी यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर लिया । कॉलेज में पढ़ते समय आपने शास्त्रीय संगीत नियमित रूप से सीखना आरम्भ कर दिया था । सितार सीखने में आपकी विशेष रुचि थी, अतः अनेक कठिनाइयाँ होते हुए भी आपने तीन वर्ष के अन्दर सितार का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया । सन् १८९० में एल.एल.बी. की परीक्षा

पास कर लेने के पश्चात् वे कराँची चले गये और वहाँ वकालत आरम्भ कर दी । विशेष सफलता न मिलने पर वे बम्बई लौट आये और छोटी अदालतों में वकालत करने लगे ।

संगीत का अंकुर तो भातखंडे जी के हृदय में बाल्यकाल से था ही । इन्हीं दिनों उन्हें प्रसिद्ध संगीतकारों को सुनने का अवसर प्राप्त हुआ, जिससे वे बहुत प्रभावित हुए और उनकी सुप्त संगीत जिज्ञासा जाग उठी । आपकी तीव्र इच्छा हुई कि भारतीय संगीत कला की छान-बीन करनी चाहिए । अतः आपने बम्बई के गायन उत्तेजक मण्डल में कुछ दिन संगीत शिक्षा प्राप्त की एवं अनेक संगीत ग्रन्थों का अवलोकन किया ।

सन् १९०४ में आपकी ऐतिहासिक संगीत यात्रा आरम्भ हुई । सबसे पहले आपने दक्षिण की ओर भ्रमण किया और वहाँ के बड़े-बड़े नगरों में स्थित पुस्तकालयों में पहुँचकर संगीत सम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन किया एवं अनेक दक्षिणी संगीत विद्वानों के साथ संगीत चर्चा में भाग लिया । उन लोगों से बहुत से प्रश्न भी किये । यहीं पर आपको पं. व्यंकटमखी के ७२ मेल (ठाठ) का भी पहली बार पता चला ।

सन् १९०६ में पंडितजी ने उत्तरी तथा पूर्वी भारत की यात्रा की । इस यात्रा में उन्हें उत्तरी संगीत पद्धति की विशेष जानकारी हुई । विविध कलावंतों से आपने बहुत से गाने भी सीखे और संगीत विद्वानों से मुलाकात करके प्राचीन तथा अप्रचलित रागों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की ।

सन् १९०७ में आपने विजयनगरम्, हैदराबाद, जगन्नाथपुरी, नागपुर और कलकत्ता की यात्रा की तथा सन् १९०८ में मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश के विभिन्न नगरों का दौरा किया । उन दिनों उत्तर भारत में प्राचीन राग-रागिनी पद्धति प्रचलित थी और यहाँ के संगीतज्ञ उसके नियमों पर ध्यान न देते हुए मनमाना गाते थे । अतः पण्डितजी ने दक्षिण पद्धति के जन्य जनक अर्थात् राग-ठाठ-प्रणाली का प्रचार उत्तर भारत में किया । परिणामस्वरूप यहाँ के संगीतज्ञ 'राग-रागिनी-प्रणाली' के स्थान पर 'ठाठ-राग-प्रणाली' को ठीक समझकर उसकी ओर आकर्षित हुए और कुछ समय बाद उत्तर भारत में ठाठ-पद्धति चालू हो गयी ।

संगीत कला का विशेष ज्ञान प्राप्त करने एवं उसके प्रचार के उद्देश्य से सर्वप्रथम उन्होंने सन् १९१६ में एक विशाल संगीत सम्मलेन बड़ौदा में आयोजित किया, जिसका उद्घाटन महाराजा बड़ौदा द्वारा हुआ । इस सम्मलेन में संगीत के बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा संगीत के अनेक तथ्यों पर गम्भीरतापूर्वक विचार विनिमय हुआ और एक 'ऑल इण्डिया म्यूजिक एकेडमी' की स्थापना का प्रस्ताव पारित हुआ । इसके बाद दूसरा सम्मलेन दिल्ली में, तीसरा बनारस में और चौथा लखनऊ में आयोजित किया गया । उनके अलावा अन्य कई स्थानों में भी संगीत सम्मलेन हुए । संगीत की उन्नति और प्रचार के लिए कई जगह आपने म्यूजिक कॉलेज भी स्थापित किये, जिनमें लखनऊ का मैरिस म्यूजिक कॉलेज, अब भातखंडे संगीत महाविद्यालय, लखनऊ, ग्वालियर का माधव संगीत विद्यालय तथा बड़ौदा का म्यूजिक कॉलेज विशेष उल्लेखनीय हैं । इन कॉलेजों में भातखंडे पद्धति के अनुसार ही शिक्षा दी जाती है ।

संगीत कला पर आपने अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं तथा कुछ प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद भी किया । मराठी में चार भागों में लिखित 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' (भातखंडे संगीत शास्त्र) तथा छः भागों में लिखित 'क्रमिक-पुस्तक-मालिका' नामक आपके ग्रन्थों से संगीत विद्यार्थियों को जो अपूर्व लाभ हुआ है, उसका वर्णन करना लेखनी की शक्ति से बाहर की बात है । आज प्रायः सभी संगीत महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में ये पुस्तकें स्वीकृत हैं ।

भातखंडे जी के कार्य को हम निम्नांकित चार भागों में बाँट सकते हैं –

१. मुस्लिम काल में विशेष उन्नति पर पहुँचे हुए संगीत को शास्त्रबद्ध करना और नवीन शास्त्र बनाना ।
२. घरानेदार गायकों के गाने सुनकर उनकी स्वर लिपि तैयारकर पुस्तकों के माध्यम से प्रकाशित करना ।
३. सरल स्वर लिपि पद्धति का निर्माण कर उसे प्रचार में लाना ।

४. संगीत कला की क्षत-विक्षत पद्धतियों के स्थान पर मेल तथा मुकाम पद्धति के आधार पर नई आधुनिक ठाठ पद्धति का निर्माण ।

आप एक सफल वाग्गेयकार भी थे । आपका उपनाम 'चतुर पण्डित' था । क्रमिक पुस्तकों की बहुत-सी चीजों में 'चतुर' उपनाम का प्रयोग हुआ है, जो आपकी ही बनायी हुई हैं ।

सन् १९३१ में भातखंडे जी पर रोगों का जो आक्रमण हुआ, तो आपका स्वास्थ्य फिर बिगड़ता ही चला गया । तीन साल की लम्बी बीमारी के बाद संगीत का यह पुजारी १९ सितम्बर, १९३६ को गणेश चतुर्थी के दिन परलोकवासी हो गया । भारतीय संगीत कला का उद्धार करने वाले इस महापुरुष का नाम संगीत के स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा ।

पं. विष्णुदिगम्बर पलुस्करजी

पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर का जन्म महाराष्ट्र के कुरुन्दवाड़ राज्य में १८ अगस्त, १८७२ को हुआ था । इनके पिता पं. दिगम्बर (बुवा) पंत एक कीर्तनकार थे । १२ वर्ष की आयु में दीपावली के अवसर पर आतिशबाजी चलाते हुए एक पटाखे के विषैले धुएँ से नेत्रों की ज्योति क्षीण हो जाने पर इनकी अंग्रेजी शिक्षा रुक गयी, अतः पिता ने इन्हें मिरज के प्रसिद्ध गायक पं. बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर के पास भेज दिया, जहाँ इन्होंने संगीत का सभी प्रकार का ज्ञान प्राप्त किया । अपने गुरु की गायन शैली इन्होंने अच्छी तरह आत्मसात कर ली थी । छात्रावस्था में आपका जीवन बहुत सादा और निर्मल था तथा सदैव संगीत शिक्षा और गुरु सेवा में ही तल्लीन रहते थे ।

सन् १८९९ में अपना संगीत शिक्षण समाप्त कर ये महाराष्ट्र के गाँवों में भ्रमण करने लगे, तब इन्होंने अनुभव किया कि समाज में गायकों की दशा अत्यन्त शोचनीय है । संगीतज्ञों का जैसा सम्मान होना चाहिए, वैसा नहीं है । अतः इन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक समाज में संगीत कला प्रतिष्ठित नहीं होगी, तब तक मैं चैन से नहीं बैठूँगा ।

अपनी इस प्रतिज्ञा एवं उद्देश्य की पूर्ति के लिए इन्होंने प्रचलित गीतों में से श्रृंगार रस के भद्दे शब्दों को हटाकर भक्ति-रस पूर्ण उत्तम शब्दों को स्थान दिया । परिणामस्वरूप वे समाज में प्रतिष्ठित होने लगे । ५ मई, १९०१ को लाहौर में 'गान्धर्व महाविद्यालय' की स्थापना कर आपने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति उसे समर्पित की दी । विद्यालय के लिए किराए पर मकान लिया, कुछ सामान और वाद्य यन्त्र भी इकट्ठे किये किन्तु अर्थाभाव के कारण विद्यालय सुचारू रूप से नहीं चल सका । उन्हीं दिनों इन्हें पिता के निधन का समाचार मिला किन्तु विचलित न होकर आप अपने लक्ष्य में जुटे रहे । शुरू में दस दिन तक इनके विद्यालय में एक भी विद्यार्थी नहीं आया किन्तु ये निराश नहीं हुए । धीरे-धीरे विद्यार्थियों का आना प्रारम्भ हुआ और छः महीने के अन्दर विद्यार्थियों की संख्या १०५ तक पहुँच गयी । इस विद्यालय के द्वारा पंजाब में संगीत का खूब प्रचार हुआ । बीच-बीच में विद्यालय के लिए धन एकत्रित करने के लिए पण्डित जी बाहर दौरे पर भी जाते थे ।

अक्टूबर १९०८ में आप बम्बई गये और वहाँ विजय दशमी के शुभ अवसर पर 'गांधर्व महाविद्यालय' की शाखा स्थापित की । यद्यपि इस विद्यालय का कार्य लाहौर के विद्यालय की शैली पर ही था किन्तु लाहौर की अपेक्षा बम्बई में अच्छी सफलता मिली । सन् १९१५ तक विद्यालय का कार्य सुचारु रूप से चलता रहा । सन् १९१५ में विद्यालय के लिए बम्बई में जमीन खरीदी गयी, उसके लिए पण्डित जी को एक मित्र ने कर्ज रूप में धन दिया और इमारत भी बनवा दी । सन् १९२३-२४ तक मकान विद्यालय के अधिकार में रहा लेकिन कुछ समय बाद ही वह आपके अधिकार से निकल गया क्योंकि उस पर चढ़ा हुआ कर्ज चुकाना मुश्किल हो गया था । इसके बाद आपने नासिक पहुँचकर उक्त प्रयोजन के लिए रामायण की कथा कहकर एक छोटी सी इमारत बनवाई, साथ ही 'रामायण मन्दिर' की स्थापना भी की । बम्बई में विद्यालय बन्द होने की कोई विशेष चिन्ता नहीं हुई । उनका कहना था कि रामजी की ऐसी ही इच्छा मालूम होती है । इस समय पण्डितजी राम धुन में मस्त रहते थे और 'रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीता राम' की धुन का प्रचार करके जनता को संगीतमय राम भक्ति का रसास्वादन काराते रहते थे ।

पण्डितजी के गीतों और पदों पर केवल भक्ति रस का ही प्रभाव नहीं रहा अपितु उनके अनेक गीतों में राष्ट्रीय भावना भी पायी जाती है । राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के वार्षिक अधिवेशनों में वे विशेष रूप से निमन्त्रित किये जाते थे और अपने शिष्यों सहित वहाँ जाकर 'वन्दे मातरम्' एवं अन्य राष्ट्रीय गान गाते थे । आपने शिष्ट और सात्त्विक संगीत के प्रचार के लिए अनेक सुयोग्य शिष्य तैयार किये, जिनमें संगीत मार्तण्ड पण्डित ओंकार नाथ ठाकुर, पं. विनायकराव पटवर्धन, पं. वामन राव पाध्ये इत्यादि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । आपके शिष्यों ने बम्बई, पूना, दिल्ली आदि भारत के सभी उन्नत नगरों में 'गांधर्व महाविद्यालय' की स्थापना की तथा संगीत से सम्बन्धित अनेक पुस्तकें लिखकर क्रमबद्ध और प्रामाणिक संगीत साहित्य का प्रचार किया । आपकी स्वर लिपि पद्धति, भातखंडे पद्धति से भिन्न है ।

संगीतोद्धारक पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने अपने जीवन का अन्तिम समय एक महात्मा की भाँति व्यतीत किया । २१ अगस्त, १९३१ को महाराष्ट्र के मिरज नगर में यह संगीत सन्त परलोकवासी हो गया । आपके सुपुत्र डी.वी. पलुस्कर ने भी अल्पायु में ही संगीत जगत में अच्छा नाम कमाया ।

श्रीतानसेनजी

'संगीत' शब्द से जिन व्यक्तियों को थोड़ा भी प्रेम होगा, वे तानसेन के नाम से भली-भाँति परिचित होंगे । यद्यपि इस महान गायक की मृत्यु को हुए चार सौ वर्ष से भी अधिक हो चुके हैं, फिर भी संगीत के आकाश में इसकी विमल कीर्ति सूर्य के समान देदीप्यमान है ।

ग्वालियर से सात मील दूर एक छोटे से गाँव 'बेहट' में मुकुन्दराम पांडे या मकरंद पांडे नामक एक सन्तानहीन ब्राह्मण के परिवार में मुहम्मद गौस नामक एक सिद्ध फ़क़ीर के आशीर्वाद से सन् १५०६ में तानसेन का जन्म हुआ । बचपन में इनका नाम 'तन्ना मिश्र' रखा गया था । एकमात्र सन्तान होने के कारण बच्चे का पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से हुआ । आठ-दस वर्ष की अवस्था होते-होते बालक तन्ना में एक आश्चर्यजनक प्रतिभा देखी गयी, वह थी आवाजों की हू-ब-हू नकल करना । किसी भी पशु-पक्षी की आवाज की असल नकल कर लेना इसके लिए खेल था । शेर की बोली बोलकर अपने बाग़ की रखवाली करने में इसे बड़ा मजा आता था ।

एक बार वृन्दावन के महान संगीतकार सन्त स्वामी हरिदासजी अपनी शिष्य-मण्डली के साथ उक्त बाग़ में होकर गुजरे तो तन्ना ने एक पेड़ की आड़ में छिपकर शेर की दहाड़ लगाई । खोज की गयी तो दहाड़ता हुआ बालक तन्ना मिला । जब अन्य पशु-पक्षियों की आवाज भी बालक से सुनी तो स्वामीजी मुग्ध हो गये और उसे संगीत शिक्षा देने के लिए उसके पिता से माँगकर अपने साथ ही वृन्दावन ले आये । गुरु कृपा से लगभग दस वर्ष की ही साधना में ही बालक तन्ना धुरन्धर गायक बन गया और यहीं इसका नाम तन्ना के स्थान पर 'तानसेन' हो गया । गुरुजी का आशीर्वाद पाकर तानसेन ग्वालियर लौट आये । इसी समय इनके पिताजी की मृत्यु हो गयी । मृत्यु से पूर्व पिता ने तानसेन को उपदेश दिया कि तुम्हारा जन्म मुहम्मद गौस नामक फ़क़ीर की कृपा से हुआ है, इसलिए तुम्हारे शरीर पर अब भी उसी फकीर का अधिकार है । अपनी जिन्दगी में उस फकीर की आज्ञा की कभी अवहेलना मत करना । पिता का उपदेश मानकर तानसेन मुहम्मद गौस फकीर के पास ग्वालियर आ गये । तानसेन को उन्होंने अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया । कुछ समय बाद राजा मानसिंह की विधवा पत्नी रानी मृगनयनी से तानसेन का परिचय हुआ, जो बड़ी ही मधुर एवं विदुषी गायिका थीं । वे तानसेन का गायन सुनकर बहुत प्रभावित हुईं । उन्होंने अपने संगीत मन्दिर में शिक्षा पाने वाली हुसैनी ब्राह्मणी नामक एक सुमधुर गायिका लड़की के साथ तानसेन का विवाह कर दिया । विवाह के पश्चात् तानसेन अपने गुरुजी के सानिध्य में शिक्षा प्राप्त करने के लिए पुनः वृन्दावन चले गये । इसी समय फकीर मुहम्मद गौस का अन्तिम समय निकट आ गया । अतः गुरु के आदेश पर तानसेन को तुरन्त ग्वालियर वापस जाना पड़ा । फ़क़ीर साहब की मृत्यु हो गयी और अब तानसेन एक विशाल सम्पत्ति के अधिकारी बन गये । वे ग्वालियर में रहकर आनन्दपूर्वक गृहस्थ जीवन व्यतीत करने

लगे । तानसेन के तीन पुत्र और एक पुत्री थे । पुत्रों के नाम सुरतसेन, तरंगसेन और विलास खाँ तथा पुत्री का नाम सरस्वती रखा गया । तानसेन की सन्तान भी संगीत कला के संस्कार लेकर पैदा हुई । अतः सभी बच्चे उत्कृष्ट कलाकार हुए ।

संगीत-साधना पूर्ण होने के बाद सर्वप्रथम तानसेन को रीवाँ के महाराज राजाराम अपने दरबार में ले गये । इन्हीं दिनों तानसेन के सौभाग्य का सूर्य चमक उठा । बादशाह अकबर सिंहासनारूढ़ हुए । महाराज राजाराम और अकबर की प्रगाढ़ मैत्री थी । अतः महाराज ने तानसेन जैसे दुर्लभ रत्न को बादशाह अकबर को भेंट कर दिया । सन् १५५६ ई. में तानसेन अकबर के दरबार में दिल्ली आ गये । बादशाह ऐसे अमूल्य रत्न को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ । उसने तानसेन को अपने नवरत्नों में सम्मिलित कर लिया । यह तानसेन का शौर्य काल था । तानसेन के प्रति बादशाह का अटूट स्नेह देखकर दूसरे दरबारी गायक जलने लगे । किंवदन्ती के अनुसार एक दिन उन्होंने अकबर से कहा कि हुजूर ! हमें तानसेन से 'दीपक' राग सुनवाया जाए और आप भी सुनें क्योंकि इस राग को तानसेन के अलावा और कोई सही रूप में नहीं गा सकता । बादशाह राजी हो गया । तानसेन द्वारा इस राग का अनिष्टकारी परिणाम बताये जाने तथा लाख मना करने पर भी अकबर का राज हठ नहीं टला और तानसेन को दीपक राग गाना ही पड़ा । राग जैसे ही शुरू हुआ, गर्मी बढ़ी और धीरे-धीरे वायुमण्डल अग्निमय हो गया । सुनने वाले अपने प्राण बचाने के लिए इधर-उधर छिप गये किन्तु तानसेन का शरीर अग्नि तत्त्व की दाहकता के कारण झुलसने लगा । असह्य होने के कारण तानसेन अपने घर भागे और वहाँ उनकी पुत्री तथा गुरु भगिनी ने 'मेघ' राग गाकर उनके जीवन की रक्षा की । इस घटना के कई मास पश्चात् तानसेन का शरीर स्वस्थ हुआ । अकबर भी अपनी गलती पर बहुत पछताया ।

कहा जाता है कि तानसेन के जीवन में पानी बरसाने, जंगली पशुओं को बुलाने और रोगियों को ठीक करने आदि की अनेक चमत्कारपूर्ण घटनायें हुईं । यह निर्विवाद सत्य है कि तानसेन को गुरु कृपा से बहुत सी राग-रागिनियाँ सिद्ध थीं और उस समय देश में उनके जैसा दूसरा कोई संगीतज्ञ नहीं था । तानसेन ने व्यक्तिगत रूप से कई रागों का निर्माण भी किया, जिनमें दरबारी कान्हड़ा, मियाँ की सारंग, मियाँ मल्हार आदि उल्लेखनीय हैं ।

अन्तिम समय में जब तानसेन ज्वर से पीड़ित हुए तो उन्होंने ग्वालियर जाने की इच्छा प्रकट की परन्तु बादशाह के मोह और स्नेह के कारण फरवरी, १५८५ में वे दिल्ली में ही स्वर्गवासी हुए । तानसेन की अन्तिम इच्छा के अनुसार उनका शव ग्वालियर पहुँचाकर फ़क़ीर मुहम्मद गौस की कब्र के पास ही उनकी समाधि बना दी गयी ।

तानसेन की मृत्यु के पश्चात् उनका कनिष्ठ पुत्र विलास खाँ 'तानसेन' के संगीत को जीवित रखने और उनकी कीर्ति को प्रसारित करने में समर्थ हुआ ।

श्रीसामता प्रसाद (गुदई महाराज)

बनारस के तबला सम्राट 'प्रतप्पू महाराज' के घराने के तबला वादकों में गुदई महाराज वर्तमान समय के प्रसिद्ध तबला वादकों में हो गये हैं । आपका जन्म जुलाई, १९२१ को काशी (वाराणसी) में हुआ था । आपकी प्रारम्भिक शिक्षा आपके पिता पण्डित बाचा प्रसाद मिश्र के द्वारा हुई, जो स्वयं एक गुणी तबला वादक थे । इस प्रकार ७ वर्ष की आयु तक इन्हें व्यवस्थित ढंग से शिक्षा मिलती रही । पिताजी की मृत्यु के पश्चात् आपकी तालीम पण्डित बक्कू मिश्र द्वारा आगे बढ़ती रही । अत्यन्त रियाज और अथक परिश्रम द्वारा गुदई महाराज ने तबला वादन के क्षेत्र में अपूर्व यश अर्जित किया । सन् १९७२ ई. में आपको भारत सरकार ने पद्मश्री से विभूषित किया था ।

आपके दो पुत्र हुए – कुमार और कैलाश । देश-विदेश में तो गुदई महाराज ने अपने वादन द्वारा तबला को सम्मान दिलाया ही, साथ ही फिल्म के क्षेत्र में भी आपने अच्छी ख्याति अर्जित की । आपके उल्लेखनीय शिष्यों में पण्डित सत्यनारायण वशिष्ठ (शैक्षणिक क्षेत्र) तथा पुत्र कुमार लाल (क्रियात्मक क्षेत्र) उल्लेखनीय हैं । हृदयगति रुक जाने से जून, १९९४ ई. में वाराणसी में ही आपका निधन हो गया था ।

श्रीकिशनजीमहाराज

पण्डित किशन महाराज का जन्म काशी (वाराणसी) में ३ सितम्बर, १९२३ (श्रीकृष्ण जन्माष्टमी) को हुआ था, इसी कारण इनका नाम 'किशन' रखा गया । आप वर्तमान युग के एक प्रख्यात 'तबला वादक' हैं । बचपन में आपकी रुचि लयकारी की ओर विशेष थी, तैयारी की तरफ कम । आपने तबले की शिक्षा अपने पिता पण्डित कण्ठे महाराज से प्राप्त की । आपका घराना पण्डित राम सहाय मिश्र का है, जो बनारस-बाज के नाम से जाना जाता है । तबले के अतिरिक्त आपने बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त की है और चित्रकला में भी महारथ हासिल की है । तबला में स्वतन्त्र (एकल) वादन के अतिरिक्त आप गायन, वादन एवं नृत्य की संगति में भी बहुत निपुण हैं । आपकी वादन शैली बनारस अंग की होते हुए भी लोचदार है । बनारस घराने के अतिरिक्त अन्य घरानों के बाजों पर भी आपका अधिकार है ।

पण्डित किशन महाराज अनेक सम्मान प्राप्त कर चुके हैं, जिनमें १९६३ में राजस्थान के राज्यपाल डॉ. सम्पूर्णानन्द द्वारा 'विद्वत्ता-मानपत्र', १९६९ में प्रयाग संगीत समिति द्वारा 'संगीत सम्राट', १९७२ में उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी द्वारा 'रत्न-सदस्य' एवं भारत सरकार द्वारा १९७३ में 'पद्मश्री' प्रमुख हैं ।

ब्रजनिष्ठ परम भगवदीय 'श्रीकुम्भनदासजी'

बाबाश्री द्वारा कथित 'श्रीकुम्भनदासजी के चरित्र' (१९/१०/२००७) से संकलित

वल्लभ सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार सखी और सखा दोनों एक ही हैं । रात्रि में इनका सखी रूप रहता है और दिन में सखा रूप रहता है । सख्य लीला में कुम्भनदासजी अर्जुन सखा हैं तथा रात्रि में विशाखा सखी हैं । गिरिराजजी में आन्योर की तरफ इनका स्थान (द्वार) है । ये यमुनावतो गाँव के रहने वाले थे । इनके गाँव का नाम यमुनावतो कैसे पड़ा, इसके पीछे शास्त्र का प्रमाण है कि पहले सारस्वत कल्प में यमुनाजी की दो धारायें थीं । ब्रह्माजी के एक दिन को कल्प कहते हैं । सारस्वत कल्प में यमुनाजी की दो धाराओं में से एक धारा यमुनावतो के पास से होते हुए आगरा की तरफ निकल जाती थी । उस समय आगरा नहीं था । यमुनाजी की दूसरी धारा चीर घाट होते हुए, गोकुल होते हुए, दोनों धाराएँ आगे मिल जाती थीं । चीरघाट से यमुनाजी की धारा गिरिराजजी आती थी । चन्द्रसरोवर के किनारे श्रीकृष्ण ने वासन्ती रास और शारदीय रास किया था । चन्द्रसरोवर से वे अन्तर्धान हो गये । गोपियाँ वहाँ से श्रीकृष्ण की खोज करती हुई गोविन्दकुण्ड के पास से होकर अप्सरा कुण्ड पहुँचीं तो वहाँ उनको श्रीकृष्ण के चरण चिह्न दिखाई पड़े । वहाँ से वे आगे चलीं तो गिरिराजजी में जो सिन्दूरी शिला है, वहाँ श्यामसुन्दर ने राधारानी का श्रृंगार किया, उनकी वेणी गूँथी, उनकी आँखों में काजल लगाया । सिन्दूरी शिला, काजल शिला और बाजनी शिला से श्रीजी आगे चलीं तो रुद्र कुण्ड पहुँचीं । जिसका जीर्णोद्धार मान मन्दिर सेवा संस्थान के द्वारा किया गया है । रुद्र कुण्ड में श्रीजी ने मान किया । वहाँ श्यामसुन्दर ने श्रीजी से कहा कि आप मेरे कन्धे पर चढ़ जाइए । जैसे ही श्रीजी श्यामसुन्दर के कन्धे पर चढ़ने लगीं, उसी समय श्यामसुन्दर अन्तर्धान हो गये । उस समय विरह वेदना से व्याकुल होकर श्रीजी यहीं धरती पर गिर पड़ीं और कहा – **हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज । दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥**

यह श्लोक श्रीजी ने रुद्रकुण्ड के तट पर ही रुदन करते हुए कहा था । इसीलिए उसको रुद्रकुण्ड कहते हैं । यहाँ पर सभी गोपियाँ श्रीजी से आकर मिलीं । जान-अजान वृक्ष से कृष्ण के बारे में पूछती हुई यमुनावतो में यमुना पुलिन पर उन्होंने गोपीगीत गाया था । इसके बाद परासौली में श्रीकृष्ण प्रकट हुए और चन्द्रसरोवर पर रास हुआ । यमुनाजी में उन्होंने गोपियों के साथ जल विहार किया । इस प्रकार सारस्वत कल्प का जो महारास था, वह चन्द्र सरोवर का था । गोपियाँ श्रीकृष्ण की खोज करती हुई श्यामढाक तक गयी थीं । वहाँ अन्धकार अधिक था, अन्धकार देखकर गोपियाँ लौट आयीं कि श्रीकृष्ण वन में और अधिक अन्धकार में चले जायेंगे । वहाँ से आगे सामयी है, जिसको सामयी खेड़ा कहते हैं । श्रीकृष्ण चले गये थे, इसलिए गोपियाँ वहाँ चली आयीं । श्वेत वाराह कल्प में जो रास हुआ था, भागवत में उसका वर्णन

है । सारस्वत कल्प के महारास का परासौली में वर्णन प्राप्त होता है । वसन्त और चैत्र-वैशाख का रास वृन्दावन में केशीघाट के पास वंशी वट के नीचे हुआ था । यमुनावतो गाँव भी महारास का एक स्थल है । यमुनाजी वहाँ से होकर बहती थीं । इसलिए उस गाँव का नाम यमुनावतो है । यमुनाजी की एक धारा नन्दगाँव-बरसाना के बीच स्थित संकेत के पास से होकर आती थी । लगभग २५-३० साल पहले जब एक बार वर्षा काल में पानी बहुत गिरा था तो यमुनाजी की धारा संकेत के पास से परासौली होते हुए महीनों तक बही थी, उसको हमने भी देखा है । यह यमुनावतो गाँव का संक्षेप में इतिहास है । यहीं पर कुम्भनदासजी का जन्म हुआ था । वे सीधे ब्रजवासी थे और खेती किया करते थे । बालकपन से ही संसारी कामों में इनकी आसक्ति नहीं थी । जब ये बड़े हुए तो इनके माता-पिता ने बहुला वन (बाटी) के एक ब्रजवासी की कन्या के साथ इनका विवाह कर दिया । माता-पिता के आग्रह से न चाहते हुए भी इनको विवाह करना पड़ा । इनकी पत्नी एक साधारण स्त्री थी किन्तु उसको कुम्भनदासजी जैसा पति प्राप्त हुआ । इसलिए उसका भी कल्याण हुआ । उस समय तक गोवर्धननाथजी अथवा श्रीनाथजी प्रकट नहीं हुए थे । श्रीनाथजी के बारे में ऐसी कथा है कि एक बार महाप्रभु वल्लभाचार्यजी पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए झारखण्ड पहुँचे । झारखण्ड एक प्रसिद्ध जंगल है । चैतन्य महाप्रभु जी भी यहाँ से होकर निकले थे । वहाँ वल्लभाचार्यजी से ठाकुरजी ने कहा कि मैं गिरिराजजी में दबा हुआ हूँ और तुम मुझे प्रकट करके वहाँ मेरी सेवा का विस्तार करो । श्रीनाथजी का आदेश सुनकर वल्लभाचार्यजी झारखण्ड से सीधे ब्रज में चले आये । श्रीनाथजी के सम्बन्ध में गौड़ेश्वर सम्प्रदाय में अलग कथा है और वल्लभ सम्प्रदाय में अलग कथा है । गौड़ेश्वर सम्प्रदाय में ऐसी मान्यता है कि श्रीनाथजी का प्राकट्य माधवेन्द्र पुरी जी ने किया था, वहाँ उनका नाम गोपाल है । वल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार इनका नाम श्रीगोवर्धन नाथ है । संक्षेप में इन्हें श्रीनाथ कहते हैं । दोनों सम्प्रदायों में श्रीनाथ जी के प्राकट्य के सम्बन्ध में बड़ा विवाद है । मेरी दृष्टि में तो विवाद कुछ भी नहीं है क्योंकि उस समय कई बार यवनों का आक्रमण होता रहता था, इसलिए लोग ठाकुरजी के श्रीविग्रह को भूमि के भीतर छिपा देते थे । उनको फिर से प्रकट किया जाता था । गोविन्ददेवजी वज्रनाभजी द्वारा स्थापित थे । उनको भी यवनों के भय से छिपा दिया गया था, कालान्तर में उनको वृन्दावन में गोमय टीला से श्रीरूप गोस्वामीजी ने प्रकट किया । हम लोगों को साम्प्रदायिक विवादों में नहीं पड़ना चाहिए । इस तरह ठाकुरजी के विग्रह को लोग यवनों के भय से छिपा देते थे । इसलिए सभी कथायें सत्य हैं । श्रीनाथजी की सेवा वल्लभाचार्यजी ने भी की तथा माधवेन्द्र पुरी जी ने भी की है । श्रीनाथजी तो वही हैं । इस बात को चैतन्य चरितामृत में कृष्णदास कविराज जी ने भी लिखा है कि मथुरा में जब गोस्वामी विट्ठलनाथजी सेवा कर रहे थे तो उस समय सभी गौड़ीय वैष्णव श्रीरूपजी, सनातनजी आदि गोस्वामीजी के साथ मथुरा में विराजे और वहाँ उन्होंने गोपालजी या श्रीनाथजी का दर्शन किया और उनके दर्शन का आनन्द प्राप्त किया अर्थात् उनमें आपस में बड़ा प्रेम था, एक साथ रहते थे । आजकल जो दोनों सम्प्रदायों के मध्य साम्प्रदायिक विवाद है, यह तब नहीं था क्योंकि मैंने स्वयं चैतन्य चरितामृत पढ़ा है और तब कह रहा हूँ । गौड़ीय सम्प्रदाय में इनको गोपालजी कहा जाता है और वल्लभ सम्प्रदाय में इनको श्रीगोवर्धन नाथ या श्रीनाथजी कहा जाता है । श्रीनाथजी जब मथुरा में विराजते थे तो जितने भी गौड़ीय महापुरुष – श्रीरूपजी, सनातनजी, लोकनाथ आदि थे, इन सबने गोस्वामी विट्ठलनाथजी के साथ मथुरा में रहकर आनन्द लिया था ।

श्रीनाथजी जब गिरिराजजी में प्रकट हुए थे तो महाप्रभु वल्लभाचार्यजी झारखण्ड से सीधे यहाँ आये । उनके साथ उनका परिकर था – दामोदरदास हरसानी, कृष्णदास मेघन, माधवभट्ट, नारायणदास, रामदास । ये पाँच सेवक वल्लभाचार्यजी महाराज के साथ थे, जब ये पृथ्वी की परिक्रमा कर रहे थे । जब ये आन्यौर में आये, उस समय वहाँ सद्दू पाण्डेय नामक एक ब्रजवासी थे । उनके घर के द्वार पर एक चबूतरा था, उस पर महाप्रभु वल्लभाचार्यजी पधारे । उन्होंने सद्दू पाण्डेय, उनके भाई माणिक चन्द्र पाण्डेय, नरो भवानी आदि से कहा कि श्रीनाथजी ने मुझे आज्ञा दी है कि मैं गिरिराज पर्वत पर प्रकट हूँ । वे कहाँ हैं ? उन्होंने गोवर्धन पर्वत के ऊपर एक स्थान बताया, जहाँ प्रतिदिन एक गाय अपने थन से दूध स्रवित करती थी । इस स्थान से किसी तरह श्रीनाथजी प्रकट हुए । रामदास चौहान की पूंछरी में एक गुफा है, जहाँ पहले राघव पण्डितजी भी

रहे । वे गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रसिद्ध महापुरुष थे । उस गुफा में रामदास चौहान रहते थे । वल्लभाचार्य जी महाराज ने श्रीनाथजी की सेवा इनको सौंपी । कुम्भनदासजी यमुनावतो में रहते थे । उन्होंने सुना कि गिरिराजजी के ऊपर श्रीनाथजी प्रकट हुए हैं तथा वहाँ के निवासी सद्दू पाण्डेय आदि उनकी सेवा कर रहे हैं तो कुम्भनदासजी भी यमुनावतो से आन्योर आये । इनकी पत्नी भी साथ में गयी थी । उसने सोचा कि मेरे कोई पुत्र नहीं है । ऐसा सुनते हैं कि महाप्रभु वल्लभाचार्यजी बड़े सिद्ध महात्मा हैं, उनके मन में कामना थी कि इनसे आशीर्वाद लें ताकि कोई सन्तान उत्पन्न हो । कुम्भनदासजी ने महाप्रभु वल्लभाचार्यजी को दण्डवत प्रणाम किया । उन्होंने कुम्भनदासजी को दीक्षित किया । कुम्भनदासजी और इनकी पत्नी ने महाप्रभु से दीक्षा प्राप्त करके संकर्षण कुण्ड में स्नान किया । संकर्षण कुण्ड आन्योर में परिक्रमा मार्ग पर ही स्थित है । यह बहुत बड़ा कुण्ड है । दीक्षा प्राप्त करने के बाद जब कुम्भनदासजी और इनकी पत्नी महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के पास बैठे तो कुम्भनदासजी की पत्नी ने महाप्रभुजी से कहा कि आप बड़े महात्मा हैं । मेरे कोई पुत्र नहीं है । महाप्रभु जी ने कहा – 'तू चिन्ता मत कर । तेरे सात पुत्र होंगे ।' कुम्भनदास जी अपनी स्त्री से बड़े ही असन्तुष्ट हुए । उन्होंने कहा – 'अरे, तुझे आचार्यजी से ठाकुरजी को माँगना चाहिए था । ये तो ऐसे महापुरुष हैं कि साक्षात् ठाकुरजी को भी प्रदान कर सकते हैं । तूने इनसे पुत्र क्यों माँग लिया ?' इनकी पत्नी ने कहा – 'मेरे मन में जो इच्छा थी, वह मैंने माँग लिया ।' इस घटना के बाद श्रीनाथजी का मन्दिर बना । रामदास, सद्दू पाण्डेय आदि ब्रजवासी श्रीनाथजी के भोग के लिए दूध, दही, माखन आदि सामग्री लाते थे । महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने इन्हें आज्ञा दी कि श्रीनाथजी मेरे इष्ट हैं । इनकी सेवा किये बिना तुम लोग पानी मत पीना । कुम्भनदासजी बहुत सुन्दर गाते थे, इनका स्वर बहुत बढ़िया था । महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने इनसे कहा कि तुम श्रीनाथजी को नित्य ही गान सुनाया करो । इस तरह महाप्रभुजी ने कुम्भनदासजी को श्रीनाथजी के समक्ष गान की सेवा दी । सबसे पहले इन्होंने श्रीनाथजी के सामने यह पद गाया था । रात्रि को श्रीराधारानी के साथ श्रीकृष्ण निकुंजलीला में शयन में थे । राधारानी का एक नाम है - नीलाम्बरी । उनके गौर विग्रह पर नीले रंग की साड़ी और श्यामसुन्दर के नीले विग्रह पर पीत पीताम्बर शोभायमान होते हैं । निकुंज में रात्रि शयन के पश्चात् जब प्रातःकाल ये दोनों चले तो इनके वस्त्र बदल गये । श्यामसुन्दर ने राधारानी के नील पट को ओढ़ लिया तथा राधारानी श्यामसुन्दर के पीताम्बर को ओढ़कर निकुंज से निकलीं । श्रीनाथजी का ऐसा दर्शन करके कि राधारानी का नीलाम्बर पहनकर निकुंज गृह से चले आ रहे हैं । उन्होंने कहा था कि मैं संध्या को आऊँगा । सच में लालजी निकुंज में आये । कुम्भनदास जी ने यह पद गाया –

साँझ के साँचे बोल तिहारे । रजनी आनत जगे नन्दनन्दन, आये निपट सँवारे ॥

सखियाँ कह रही हैं – हे लालन ! तुमने अपना पीताम्बर कहाँ छोड़ दिया ? तुम तो नीलाम्बर ओढ़कर आये हो ।

आतुर भये नील पट ओढ़े, पियरे बसन बिसारे । कुम्भनदास प्रभु गोवर्धनधर, भले बचन प्रतिपारे ॥

कुम्भनदासजी की लीला की यह पहली अनुभूति थी । इसीलिए वल्लभ सम्प्रदाय में इनको विशाखा सखी का अवतार माना जाता है क्योंकि विशाखाजी का ही इतना अधिकार है । दूसरी बात यह है कि कृष्ण लीला के अनेक भेद हैं जैसे बाल, पौगंड और कैशोर । एक से पाँच वर्ष तक की लीला को कुमार लीला कहते हैं । इसमें बधाई, पालना, यशोदाजी का लाड़ प्यार, नन्द भवन की सारी रीति हैं जैसे मणिमय आँगन में क्रीडा करते हैं । वत्सपाल बनकर लीला करते हैं । ये सब जो लीलायें हैं, ये बाल लीला या कुमार लीला कही जाती हैं । इसके बाद पाँच से दस वर्ष तक पौगंड लीला होती है, उसमें गौचारण लीला होती है । श्यामसुन्दर अनेक प्रकार के वनों में गोचारण करते हैं, सखाओं के साथ अनेक प्रकार की लीला करते हैं; इसमें अनेक असुर भी आते हैं तो उनका वध भी होता है । इसके बाद कैशोर लीला है । कुम्भनदासजी को जो पहली अनुभूति हुई, वह कैशोर लीला की है । कैशोर लीला में राधामाधव अत्यधिक रसाविष्ट हो जाते हैं । यही लीला जिसे कुम्भनदासजी ने गाया, इस लीला को राधासुधानिधि में भी गाया गया है - **प्रातः पीटपटं कदा व्यपनयाम्यन्यांशुकस्यार्पणात् कुञ्जे विस्मृतकञ्चुकीमपि समानेतुं प्रधावामि वा ।**

बध्नीयां कवरीं युनज्मि गलितां मुक्तावलीमञ्जये नेत्रे नागरि रङ्गकैश्च पिदधाम्यङ्गव्रणं वा कदा ॥ (श्रीराधासुधानिधि – ७५)

कुम्भनदासजी ने गाया कि निकुंज गृह से लालजी निकले तो सहचरियों ने देखा कि वे श्रीराधारानी का नीलाम्बर पहने हुए हैं और अपना पीताम्बर भूल आये हैं । उस समय सहचरियाँ श्रीकृष्ण से कहती हैं कि तुमने अपना पीताम्बर कहाँ छोड़ा है और यह तुम

किसका नीलाम्बर ओढ़कर आये हो ? श्रीमत् राधासुधानिधि के अनुसार स्वामिनीजी निकुंज गृह से निकलीं तो उनके अंगों पर पीताम्बर था । सहचरी ने ऐसा देखा तो उसने सोचा कि कोई देखेगा तो हँसेगा तो वह दौड़कर जाती है और श्रीजी ने जो पीताम्बर ओढ़ा हुआ है, उसको हटा देती है । वह श्रीजी से कहती है – 'अरी लाड़ली ! आप किसका पीताम्बर पहनकर चली आई हैं ?' ऐसा कहकर सहचरी श्रीजी के पीताम्बर को हटाती है । श्रीजी रस के आवेश में अपनी कंचुकी भी निकुंज गृह के भीतर भूल आई थीं । श्रीजी सहचरी से कहती हैं – 'अरे, मैं तो कंचुकी भीतर ही भूल आई ।' उस समय सहचरी दौड़कर भीतर जाती है और श्रीजी की कंचुकी को लाती है । वह श्रीजी से कहती है कि आप यहीं विराजो, मैं आपके श्रृंगार को सँवार दूँ, तब आप आगे चलिए । यह अधिकार ललिता-विशाखाजी का है । विशाखा जी की जो रति है, वह स्वामिनीजी की ओर विशेष है । कोई-कोई रसिक सम रति भी मानते हैं । इसीलिए श्रीजी का एक नाम है 'अनुराधा' क्योंकि विशाखा नक्षत्र के बाद अनुराधा नक्षत्र में श्रीजी का प्राकट्य हुआ था । विशाखा नक्षत्र के बाद अनुराधा नक्षत्र आता है । सहचरी श्रीजी को निकुंज के बाहर विराजमान करके उनके जूडे को बाँधती है । श्रीजी की मोतियों की माला टूट गयी थी, उसको सहचरी पोती है और उनको मोती की माला धारण कराती है । श्रीजी के नेत्रों का काजल छूट गया था, उसे भी पुनः ठीक से लगाती है । श्रीजी के अन्य अंगों पर भी रंग आदि का लेप करती है । यही लीला कुम्भन दास जी के द्वारा भी गाई गयी है । अन्तर यह है कि यहाँ सखी ने लालजी को टोका और उधर विशाखाजी ने राधारानी को टोका कि आपके अंग पर किसका पीताम्बर है ? कुम्भनदासजी ने जो पद गाया, उसमें सखी लालजी से कहती है कि तुमने किसका नीलाम्बर पहन लिया है ? अपना पीताम्बर तुम कहाँ छोड़ आये हो ? दोनों लीला एक ही हैं । लालजी के पक्ष से यह लीला गाई गयी कि सखी लालजी से नीलाम्बर के बारे में कहती है और सुधानिधि के अनुसार सखी स्वामिनी जी के पक्ष से पीताम्बर के बारे में कहती है । इस तरह कुम्भनदासजी को जो प्रथम लीला की अनुभूति हुई और उसको जब उन्होंने गाया तो आचार्य महाप्रभुजी बोले – 'कुम्भनदास जी ! तुम्हारे ऊपर तो स्वामिनीजी की बड़ी कृपा हुई । तुम्हें निकुंज लीला रस का अनुभव हुआ ।' उस समय कुम्भनदासजी ने आचार्यजी को प्रणाम किया और कहा कि यह आपकी ही तो कृपा थी । महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने कहा – 'कुम्भनदासजी ! तुम्हारे बड़े भाग्य हैं, जो तुमने स्वामिनीजी की कृपा प्राप्त की । तुमको प्रमेय लीला की अनुभूति हुई ।' वल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार लीला के दो भेद हैं – प्रमेय और प्रमाण । अन्य लीलायें प्रमाण लीला हैं तथा प्रमेय लीला लाल-लाड़ली की लीला है । यह साध्य लीला है । महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने कुम्भनदासजी को आशीर्वाद दिया कि तुम सदा इसी रस में मगन रहोगे । कुम्भनदासजी ने आचार्य चरण से विनती करी कि आप मुझ पर यही कृपा करें और मैं सदा इसी रस का अनुभव करूँ । वल्लभ सम्प्रदाय में कुम्भनदासजी ही ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने केवल लाल-लाड़ली की लीला ही गाई है । बाल लीला, कौमार लीला, पालना लीला, जन्म बधाई लीला आदि के एक भी पद इन्होंने नहीं गाये । ये ऐसे अनन्य रसिक महापुरुष थे । इसीलिए महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने इनसे तथा अन्य वैष्णवों से कहा कि तुम लोग श्रीनाथ जी की सेवा सँभालो क्योंकि मैं भारत भूमि अर्थात् पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा हूँ । जब मैं झारखण्ड में था तो उस समय श्रीकृष्ण ने मुझे गिरिराजजी से प्रकट करने की आज्ञा दी थी । प्रभु गोवर्धन नाथ की आज्ञा से मैं यहाँ आया क्योंकि उन्होंने मुझसे कहा कि मुझे प्रकट करो, मैं कलियुग में अपनी लीला का विस्तार करूँगा । इसलिए मैं श्रीनाथजी को प्रकट करने के लिए यहाँ चला आया । अब मैं पृथ्वी की परिक्रमा पूरी करूँगा । कुम्भन दास जी तथा अन्य वैष्णवों को श्रीनाथ जी की सेवा सौंपकर महाप्रभु वल्लभाचार्यजी झारखण्ड चले गये । तब से कुम्भन दास जी श्रीनाथजी के प्रथम गायक बने तथा लाल-लाड़ली की निकुंज लीला को श्रीनाथजी को सुनाया करते थे । इस तरह ये अन्य वैष्णवों के साथ श्रीनाथजी की सेवा करने लगे ।

श्रीकृष्णाश्रय का प्रवेश द्वार 'निष्कामता'

बाबाश्री द्वारा कथित 'श्रीगीताजी के सत्संग' से संकलित

(श्रीगीताजी २/६६)

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना । न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥ (श्रीगीताजी २/६६)

अयुक्त का अर्थ है, जिसके मन, बुद्धि और इन्द्रियां साधन में नहीं हैं तथा युक्त का अर्थ है कि मन, बुद्धि व इन्द्रियां साधन में लग गयीं जैसे भगवान् ने इसी बात को निम्न श्लोक में कहा –

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः । वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ (श्रीगीताजी २/६१)

इन्द्रियों को संयमित करने पर युक्त हो जाओगे, मत्पर अर्थात् भगवत्परायण हो जाओगे । हम भोग भोगते हुए युक्त नहीं हो सकते, भगवत्परायण नहीं हो सकते । भोग में भोगपरायण हो जायेंगे, कृष्णपरायण नहीं होंगे । मत्पर का अर्थ है कृष्णपर । कृष्णपरायण होने के लिए इन्द्रियों का संयम जरूरी है । युक्त कौन है, जिसकी इन्द्रियां संयमित हैं – **'वशे हि यस्येन्द्रियाणि'** - जिसकी इन्द्रियां वश में हैं, उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित हो गयी है । वही बात भगवान् २/६६ में कह रहे हैं- **नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य**-जो अयुक्त है, उसकी बुद्धि स्थित नहीं रहेगी, चंचलता रहेगी और जब बुद्धि चंचल है तो हृदय में भाव भी दूषित पैदा होंगे और जब भाव में दूषण है तो अशान्ति रहेगी । अशान्ति वाले को सुख नहीं रहता है । चार चीजें एक साथ हैं । बुद्धि अयुक्त है तो भावना अयुक्त है । भावना अयुक्त है तो अशान्ति रहेगी । अशान्ति में सुख नहीं रहता है । जो अधिक चिंता करता है, संसार का चिन्तन करता है तो दुःख के चिंतन के कारण उसका रक्तचाप भी बढ़ जाता है तब उसको सुख नहीं रहता । न शरीर का सुख रहेगा, न इन्द्रियों का सुख रहेगा और जब भावना ठीक है तो अपने आप बुद्धि ठीक, इन्द्रियां ठीक, नींद ठीक, सारा शरीर ठीक रहता है और उसको कभी भी दुःख नहीं मिलता । गाँवों में एक कहावत है – **"कै सोवे राजा को पूत, कै सोवे योगी अवधूत ।"** या तो राजा का पुत्र सोता है या योगी अवधूत सोता है । जो अयुक्त है, उसके अंदर बुद्धि नहीं है और जब बुद्धि अयुक्त है तो उसकी भावना भी दूषित है और जब भावना दूषित है तो अशांत रहेगा । अशान्त है तो उसको सुख नहीं मिलेगा चाहे वह राजा हो जाए । अत्यधिक धनी, अरबपति लोग नींद की गोली लेकर बड़ी मुश्किल से सोते हैं । इसलिए अयुक्त नहीं बनना चाहिए । जो अयुक्त है, उसको न बुद्धि रहेगी, न भावना रहेगी, एक दिन उसका सुख चला जायेगा। युक्त का अर्थ है कि हर समय साधन में लगे रहना चाहिए । साधन छोड़ने पर मनुष्य का दुःख या कष्ट अथवा अशांति बढ़ती है चाहे वह कोई भी हो, कितना भी बड़ा हो । भगवान् का आश्रय कभी नहीं छोड़ना चाहिए । जब भगवान् का आश्रय मनुष्य छोड़ देता है तो अशांत रहता है । भगवान् का आश्रय कभी मत छोडो, उनका आश्रय छोड़ने से मुसीबत बढ़ती है । यदि भगवान् का आश्रय पकड़े रहोगे तो संसार में तुमको कोई हिलाने वाला नहीं है । भगवान् का आश्रय पकड़ने वाला एक दिन अवश्य जीतता है, एक दिन अवश्य ही संसार को जीत लेता है । भगवान् का आश्रय ही उचित है और उनका आश्रय लेने वाले की विजय अवश्यम्भावी है चाहे सारा संसार ही वैरी हो जाये किन्तु भगवान् का आश्रय कभी छोड़ना नहीं चाहिए । **"कृष्ण मेरा-तेरा प्यार कभी न बदले । चाहे माँ बदले, चाहे बाप बदले, चाहे घर बदले, संसार बदले, चाहे ये तो परिवार सौ बार बदले ॥"** चाहे माँ बदले, पिता बदले, कोई भी बदले, परिवार बदल जाये किन्तु भगवान् का आश्रय नहीं छोड़ना चाहिए । इस आस्था के साथ जो चलता है, वह अवश्य विजय प्राप्त करता है । एक गजल है – **"मैं न जाऊँगा अब तेरे दर से, चाहे ठोकर लगा दे कदम से ।"** चाहे कोई ठोकर लगा दे लेकिन भगवान् को नहीं छोड़ना है, इस निष्ठा के साथ रहोगे तो भगवान् तुम्हारा दास हो जायेगा । अगर मजबूती से भगवान् को पकड़ोगे तो निश्चित वह तुम्हारा दास हो जायेगा।इसलिए सारांश यही है कि जिसकी बुद्धि अयुक्त है, उसको कभी भी सुख और शांति नहीं मिलेगी और चाहे साधारण से साधारण गृहस्थ है, यदि वह भगवान् के लिए अपनी सुख-सुविधा को छोड़ता है तो निश्चित उसको चिरस्थाई सुख-शान्ति मिलेगी ।

श्लोक – २/६७

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते । तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥ (श्रीगीताजी २/६७)

इन्द्रियों के पीछे मन लग गया । चरतां यानि इन्द्रियाँ अपने विषयों में घूम रही हैं और अनु अर्थात् उनके पीछे लग गया मन और मन ने क्या किया, बुद्धि का हरण कर लिया । मन बुद्धि को चुरा लेता है क्योंकि उसके साथ इन्द्रियां मिली हुई हैं जैसे समुद्र में तूफान आता है और वह नाव को डुबो देता है । वायु पानी में चली और वह नाव को डुबा देती है, चारो

ओर से हवा एक साथ चलती है तो उस समय हवा के वेग से नाव डूब जाती है । बाहर जो तेज हवाएं चली थीं, उसको चक्रवात कहते हैं । पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण-चारो दिशाओं से हवाएं चलती हैं । प्रबल वायु के वेग से पानी नाव में भर जाता है और नाव डूब जाती है । ऐसे ही जिसकी सारी इन्द्रियाँ एक साथ वेग करती हैं और मन भी उनके साथ मिल जाता है तो दस इन्द्रियाँ और एक मन – ग्यारह, इन ग्यारहों के जोर लगाने से बुद्धि नष्ट हो जाती है । इस प्रकार इस श्लोक में भगवान् ने बताया कि बुद्धि नष्ट कैसे होती है ।

श्लोक – २/६८

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ (श्रीगीताजी २/६८)

भगवान् कहते हैं – हे महाबाहो, अर्थात् तू बहुत बड़ा वीर है लेकिन फिर भी अगर तेरी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं तो तू कमजोर रहेगा । जिसकी इन्द्रियाँ विषयों से दूर हैं, संयमित हैं, उसकी बुद्धि सदा स्थिर रहेगी ।

१२ शक्तियों में इन्द्रियों की शक्ति को ओज कहते हैं, मन की शक्ति को सह कहते हैं तथा शरीर की शक्ति को बल कहते हैं । ये बारहों शक्तियां कामना के जन्म होने से नष्ट हो जाती हैं ।

श्लोक – २/६९

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी । यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ (श्रीगीताजी २/६९)

दो प्रकार की निष्ठायें होती हैं । उसी को रात कहा गया है । पहली निष्ठा है विषय निष्ठा और दूसरी निष्ठा है योगनिष्ठा । जो योगी है, वह विषय निष्ठा में सोता है, जागता नहीं है अर्थात् वह विषय-भोग से अलग रहता है । जो योगनिष्ठा है, जिसमें सब प्राणी सोते हैं, उसमें संयमी जागता है और जिस विषय निष्ठा में संसार के लोग जागते हैं वह मुनि के लिए त्याज्य है, वह निशा है । विषय-निष्ठा में जो लोग जागते हैं, वे योगनिष्ठा में सोते हैं और योगनिष्ठा में जो लोग सोते हैं, वे फिर विषयनिष्ठा में जागते हैं । जिस रात को दुनिया सोती है, उस रात को योगी जागता है । जिस रात में योगी सोता है, उस रात में दुनिया जागती है । विषय निष्ठा में जागते हैं अर्थात् संसार के लोग विषय निष्ठा के लिए काम करते हैं, विषय निष्ठा में जागकर अपनी इन्द्रियों का उपयोग करते हैं और जब इन्द्रियों का उपयोग विषय निष्ठा में होता है तो योगनिष्ठा में क्या काम होगा, कुछ नहीं होगा । यथार्थ बात यह है कि विषय निष्ठा में जागने वाला योगनिष्ठा में सोयेगा और योगनिष्ठा में जागने वाला विषय निष्ठा में सोयेगा । यह श्लोक बड़ा कठिन है । योगनिष्ठा में संयमी जागता है, जागने का मतलब होश में रहता है और जिस निशा में सारा संसार सो रहा है, उस रात को योगी जागता है ।

श्लोक – २/७०

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठंसमुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥ (श्रीगीताजी २/७०)

नदियाँ अपना जल ले जाकर समुद्र में मिलती हैं । वर्षा ऋतु में बाढ़ आती है तब नदियों में इतना पानी आता है कि उसके तीव्र वेग से वृक्ष टूट जाते हैं, उस समय नदियाँ इतनी भीषण गति से समुद्र की ओर जाती हैं कि ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे समुद्र को हिला देंगी लेकिन समुद्र के पास जाकर उसमें एक गंदी नाली की तरह मिल जाती हैं, उसको हिला नहीं पाती हैं । नदियों का अथाह जल लगातार उसमें जा रहा है लेकिन समुद्र की अचल प्रतिष्ठा है, वह हिलता नहीं है । जैसे नदियाँ समुद्र में प्रवेश करती हैं, उसी प्रकार से अनन्त कामनाएँ जिसके हृदय में प्रवेश कर जाती हैं लेकिन उसको हिला नहीं पाती हैं, वही योगी शान्ति प्राप्त करता है । कामनाओं से जो व्यथित होता है, वह शांति प्राप्त नहीं करता है । जैसे बहुत-सी नदियाँ समुद्र में मिल गयीं किन्तु उसे हिला नहीं पायीं, वैसे ही अनंत कामनाएँ योगी को विचलित नहीं कर पाती हैं, वही योगी शांति प्राप्त करता है । इसलिए निश्चय क्या हुआ ?

श्लोक – २/७१

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः । निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥ (श्रीगीताजी २/७१)

जो मनुष्य समस्त कामनाओं का त्याग करके स्पृहारहित होकर आचरण करता है, निर्मम – जो ममता रहित है, निरहंकार-अहंकार रहित है, वह शान्ति प्राप्त करता है । केवल शान्ति ही नहीं वह भगवान् को प्राप्त करता है ।

श्लोक – २/७२

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति । स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ (श्रीगीताजी २/७२)

यह ब्राह्मी स्थिति है, ब्राह्मी स्थिति में भगवान् से मिलन होता है, इस स्थिति को प्राप्त होने के बाद फिर मोह नहीं होता है । अन्तकाल में अगर ऐसी स्थिति है तो मनुष्य अवश्य ही ब्रह्मनिर्वाण गति को प्राप्त करता है । भगवान् की प्राप्ति को ब्रह्मनिर्वाण कहते हैं । भगवान् से मिलने के लिए समस्त कामनाओं का त्याग करना पड़ता है तब उसके बाद ब्राह्मी स्थिति आ जाती है । ब्राह्मी स्थिति अर्थात् भगवान् की स्थिति, ब्रह्म की स्थिति, इसमें पहुँचने के बाद मोह नहीं होता क्योंकि उसमें कोई ममता नहीं होती, अहंकार नहीं होता । इस स्थिति को प्राप्त करके मनुष्य शान्ति प्राप्त कर लेता है । अन्तकाल में अगर यह ब्राह्मी स्थिति आ जाए तो निश्चय ही भगवान् के पास मनुष्य पहुँच जाता है । ब्राह्मी स्थिति के लिए कामनाओं का त्याग करना आवश्यक होता है । इसलिए समस्त कामनाओं को छोड़ देना चाहिए । यदि कामनायें हैं तो वे तुमको अशांत करेंगी, कामनायें हैं तो अहंता और ममता भी रहेगी ।

श्रीराधारानी की गौ-प्रेमाराधना

विरजा नामक नदी से चारों ओर से घिरा सुरभी गौ का धाम 'गोलोक' श्रीराधामाधव की नित्य लीलास्थली है । वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा के हृदय में गोमाता के प्रति ऐसी प्रीति है कि उन्होंने गोलोक को ही अपनी क्रीड़ास्थली बनाया है – **'यत्र गावो भूरिश्रृंगाः अयासः'**

देवताओं द्वारा पृथ्वी का भार दूर करने के लिए प्रार्थना किये जाने पर श्यामसुन्दर ने गोलोक धाम में जब श्रीराधारानी से भी पृथ्वी पर अवतरित होने का अनुरोध किया तो उन्होंने कहा –

यत्र वृन्दावनं नास्ति यत्र नो यमुना नदी ।

यत्र गोवर्द्धनो नास्ति तत्र मे न मनः सुखम् ॥ (श्रीगर्गसंहिता, वृन्दावनखण्ड २/७)

जहाँ मेरी प्राणप्यारी गोमातायें नहीं हैं, उनका वर्द्धन करने वाले श्रीगोवर्धन नहीं हैं, गायों को अपने निर्मल-शीतल जल से तृप्त करने वाली श्रीयमुनाजी नहीं हैं, गोचारण की भूमि श्रीवृन्दावन नहीं है, वहाँ मेरे मन को प्रसन्नता नहीं होती, इनके बिना मैं नहीं रह सकती हूँ ।

अपनी प्राणप्रिया श्रीराधारानी की रुचि को देखकर श्रीनन्दनन्दन ने गोलोक धाम से गौओं का वर्धन करने वाले गिरिराज गोवर्धन, श्रीयमुना महारानी एवं श्रीवृन्दावन सहित ब्रजमण्डल को अपने अवतरण से पूर्व ही पृथ्वी पर भेज दिया ।

ब्रजभूमि में श्रीराधारानी के पिता बनने का गौरव प्राप्त किया वृषभानुपुरी के नरेश श्रीवृषभानु गोप ने । गर्गसंहिता के अनुसार दस लाख गोवंश का पालन करने वाले गोप को वृषभानु की संज्ञा प्रदान की जाती है । आदर्श गोभक्त होने के कारण ही श्रीवृषभानु गोप का राजसदन लाड़ली की गोभक्ति युक्त लीलाओं के मंचन के लिए उपयुक्त स्थल बन सका । श्रीवृषभानु गोप की गोसेवा के कारण ही उन्हें लाड़ली के जनक बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ अथवा यों कहें कि वृषभानु गोप की भक्ति से प्रसन्न होकर ही गोमाता ने उन्हें अपनी हृदयनिधि 'श्रीराधिका' जैसी पुत्री प्रदान की ।

लाड़ली का भव्य जन्म-महोत्सव मनाया गया, उसके केन्द्र में भी गोमाता थीं । कुलगुरु महर्षि भागुरि द्वारा जातकर्म संस्कार तथा नान्दीमुख श्राद्ध आदि सम्पन्न कराये गये दूध, दही, घी, गोमय आदि गौ-द्रव्यों के द्वारा ही । यद्यपि ब्रजवासी ब्राह्मण सदा ही

वृषभानु बाबा द्वारा गोदान से सम्मानित होते रहे, फिर भी किशोरी के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में तो कई लाख स्वर्ण मण्डित खुर से युक्त, रत्नमणि जटित रेशमी झूल से सुसज्जित पृष्ठ भाग सम्पन्न, मोतियों की मालाओं से विभूषित पूँछ से समन्वित, रत्नमणि स्वर्ण निर्मित मालाओं से सुशोभित कंठ से युक्त, सोने के सींगों से मढ़ी हुई गायें वृषभानु बाबा द्वारा ब्रजवासी ब्राह्मणों तथा आगन्तुक सहस्रों महर्षियों को प्रदान की गई ।

जब बेटी लाड़ली लगभग तीन महीने की हुई तो उसने गोशाला में जाने का हठ कर लिया । ऐसा नहीं है कि इसके पहले कभी उसे 'वृषभानु बाबा गोशाला' में गोमाता के दर्शनार्थ न लाये हों और उसको देखते ही गोशाला की समस्त गोमाताओं के थनों से अविरल दुग्ध धारा व नेत्रों से अविरल आँसुओं की धारा न प्रवाहित होने लगी हो किन्तु वह तो आज पहली बार ही गौ-माताओं के दर्शन करेगी क्योंकि इसके पहले तो वह कभी अपने नेत्र खोलती ही नहीं थी । गत् शरद् पूर्णिमा से, जब से लाड़ली की छोटी बहिन मंजु श्यामा का जन्म हुआ है, लाड़ली के नेत्र खुले ही रहते हैं । आज लाड़ली ने हठ ठान लिया है गोशाला जाने का । कीर्ति मैया अपनी गोद में साँवरी मंजु श्यामा को लिए हुए हैं । इस कारण उनका बायाँ हाथ व्यस्त है । उनके दाहिने हाथ को लाड़ली पकड़कर खींच रही है । कीर्ति मैया का कोई भी हाथ खाली न देखकर श्रीदामा ने मैया की साड़ी का छोर पकड़कर खींचना आरम्भ कर दिया । प्यार से लाडली का बड़ा भाई 'श्रीदामा भैया' कहलाता है । लाड़ली की बात सुनकर कीरति मैया ने अपनी छोटी बहन को गौ-ग्रास के लिए रोटी, साग, भात, दाल इत्यादि लेने के लिए कह दिया है । वे एक स्वर्ण थाली में गोग्रास लेकर तथा एक हाथ से अपनी पुत्री कुन्दवल्ली का हाथ पकड़कर कीर्ति मैया के पीछे चल पड़ीं । कुछ ही समय में वे सब गोशाला के द्वार पर पहुँचीं । इस मनोहारी छवि को गोमातायें आँखें फाड़कर देखने लगीं । आज प्रथम बार लाड़ली को आँख खोले देखकर प्रत्येक गोमाता के हृदय में जो आनन्द हुआ, वह अनिर्वचनीय है । अब सब बालक-बालिकायें गोमाता के साथ खेल करने लगे । साँवरी अवश्य मैया की गोद में थी । श्रीदामा गोमाता की पूँछ पकड़ता तो लाड़ली गोमाता की बार-बार उठती-गिरती पलकों को स्पर्श करना चाहती थी । लाड़ली गोमाता के कोमल थन को छूकर डरती हुई सी हाथ हटा लेती तो श्रीदामा भैया गोमाता की नासिका छिद्रों से बाहर आती तप्त वायु के सम्मुख अपना हाथ लगा लेता । अब कीर्ति मैया इन दोनों भाई-बहन को गोमाता को प्रणाम करने का निर्देश करती है । श्रीदामा झट से अपना मस्तक गोमाता के एक खुर पर रख देता है । लाड़ली भी अपने भैया का अनुकरण करना चाहती है पर कहीं गोमाता मार न दे, इस भय से वात्सल्यमयी कीरति मैया जल्दी से कह उठती हैं – 'नहीं री ! श्रीदामा तो बड़ा है, तू तो केवल हाथ जोड़कर प्रणाम कर ले ।' लाड़ली हाथ जोड़कर कुछ पल नेत्र मूँदकर गोमाता को प्रणाम करती है । कुन्दवल्ली भी वैसे ही प्रणाम करती है । उधर चपल श्रीदामा मैया की गोद में स्थित साँवरी के अत्यन्त कोमल लाल-लाल हाथों को हठपूर्वक जोड़कर उसके नेत्रों को बन्द करने की चेष्टा करता है । मैया मधुर रोष में भरकर उसे ऐसा करने से मना करती है । गोमाता यह सब लीला देख रही हैं तथा प्रेम में विभोर होती जा रही हैं । वात्सल्य के अतिरेक से उसके थनों से दूध की धारा प्रवाहित होकर भूमि को भिगो रही है । उसके नेत्र प्रेम के अश्रुओं से भरे हैं । अब मौसी कहती है – 'अरी लाड़ली राधा ! यह गौ का ग्रास तो खिला दे ।' यह सुनकर लाड़ली कुछ चपल-सी होकर जल्दी में गोमाता को खिला देती हैं । गोमाता आनन्द में विभोर हो जाती हैं । गोशाला की प्रत्येक गोमाता, वृषभ तथा बछड़े को यह अनुभव होता है कि लाडली ने गोग्रास हमें ही खिलाया है तथा यह सारी लीला भी हमारे ही साथ हुई है । अब मैया कहती है – 'सभी गोमाता की परिक्रमा कर लो ।' मैया तो गोशाला में आते ही सर्वप्रथम गोमाता को प्रणाम करा देती तथा उसकी परिक्रमा भी करा देती किन्तु भाई-बहन के खेल ने उसे अवकाश ही नहीं दिया कि वह प्रणाम और परिक्रमा के लिए निर्देश कर सके । क्रीड़ा देखकर वे निर्देशित करना भूल गयी थीं । अब सभी गोमाता की परिक्रमा करते हैं तथा वृषभानु महल की ओर चल पड़ते हैं । शीतकाल होने से आज गोमातायें भी थोड़ा देरी से वन की ओर चल पड़ती हैं ।

आज दीपोत्सव है । वृषभानुनन्दिनी की अवस्था लगभग सात वर्ष दो महीने की है । कुलगुरु महर्षि भागुरि के निर्देशानुसार आज उसे गो पूजन करना है । कार्तिक शुक्ल अमावस्या को ही भगवती सुरभी गोमाता मध्याह्न में तथा भगवती लक्ष्मी सायंकाल समुद्र मंथन से प्रकट हुई थीं । इसलिए ही शास्त्रों में कार्तिक अमावस्या को मध्याह्न में भगवती गोमाता तथा भगवती लक्ष्मी की

अर्चना का निर्देश है । लाड़ली की सहचरियों ने पूजन की समस्त सामग्री राजमहल के निकट स्थित गोशाला में प्रस्तुत कर दी है । महर्षि भागुरि अपने पाँच ब्रह्मचारी शिष्यों के साथ पधारते हैं । लाड़ली को देखकर उनके नेत्र भर आते हैं । अपने शिष्यों सहित महर्षि भागुरि तथा सखियों सहित लाड़ली गोशाला में आती हैं । चौसठ उपचारों से विधिवत मन्त्रोच्चारणपूर्वक गोमाता का पूजन होता है । वृषभानुनन्दिनी की सहचरियाँ गोमाता को नख से शिख तक रत्न मणि स्वर्ण आभूषणों तथा पुष्प आभूषणों द्वारा सजा देती हैं । वृषभानुनन्दिनी अपने करकमल से सुकोमल हरी घास तथा गुड़ आदि मिष्ठान्न गोमाता को खिलाती हैं । हृदय में तो अवश्य ही गोमाता के प्रति प्रेम की सरिता प्रवाहित है किन्तु बाहर से गुरुजनों की उपस्थिति के कारण दृष्टि भूमि पर लगी हुई है तथा सारा कार्य अत्यन्त गम्भीरता के साथ किया जा रहा है । गोमाताओं के रोम-रोम पुलकित हो रहे हैं, उनकी आँखें प्रेम के अश्रुओं से भरी हुई हैं तथा उनकी दृष्टि निर्निमेष ही वृषभानुनन्दिनी पर ही टिकी हुई है । निराजन, स्तुति, पुष्पांजलि, परिक्रमा तथा प्रणाम के उपरान्त जब गुरुदेव प्रार्थना करने का निर्देश करते हैं तो वृषभानु नन्दिनी के हृदय से एक ही प्रार्थना फूट पड़ती है – 'हे गोमाता ! ऐसी कृपा करो कि मेरे प्राणवल्लभ नन्दनन्दन श्यामसुन्दर का अनन्त काल तक मंगल हो ।' ऐसा कहते-कहते उनके नेत्र सजल हो जाते हैं । वात्सल्यमयी गोमाता के हृदय की भी तो एकमात्र यही कामना है कि युगल राधा-माधव सदा सुखी रहें । मानो इस कारण ही आशीर्वादात्मक स्वीकृति में गोमाता अपना सिर हिला देती हैं । समस्त पूजन सम्पूर्ण करके गुरुदेव तो शिष्यों सहित वृषभानु नन्दिनी को हार्दिक आशीष देकर अपनी कुटिया के लिए प्रस्थान करते हैं तो वृषभानु नन्दिनी मानो किंचित चंचल सी होकर गोमाता के कण्ठ को अपनी भुजाओं में भर लेती हैं तथा गोमाता के कपोल पर अपने सुकोमल अधरों से मधुर स्नेह चिह्न अंकित करके अपने राजसदन की ओर चल पड़ती हैं । प्राणप्यारी वृषभानु नन्दिनी को अति प्रसन्न देखकर गोमाता के हृदय में हर्ष का पारावार हिलोने लेने लगता है । आगामी कल अर्थात् कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को जब नन्दनन्दन ने गिरिराज गोवर्धन को धारण किया तब मानो इस गुरु कार्य को करने की सामर्थ्य सुकोमल शिरोमणि नन्दनन्दन को वृषभानुनन्दिनी के इस गो पूजन ने ही प्रदान की ।

अनन्त कोटि ब्रजवासी गोमाताओं तथा गोमाता के सेवक गोपी-ग्वालों की रक्षा के लिए नन्दनन्दन द्वारा श्रीगिरिराज गोवर्धन को धारण किया गया । ब्रजेश्वर नन्द, ब्रजेश्वरी यशोदा तथा अन्य समस्त ब्रजवासियों को लाड़ले नन्दनन्दन की भुजाओं में शक्ति का अभाव होता देख महर्षि शाण्डिल्य ने व्यवस्था कर दी – 'वृषभानुनन्दिनी राधा को नन्दनन्दन के सम्मुख सिंहासन पर विराजमान कर दो ।' बचपन में ही दोनों की सगाई हो चुकी थी । अतः ब्रजवासियों को भला इसमें क्या आपत्ति हो सकती थी ? यद्यपि श्रीराधारानी को अपार लज्जा के सिन्धु में डूबना पड़ा तथापि महर्षि की आज्ञा का पालन न करना – यह किसी ब्रजवासी के द्वारा कल्पना भी नहीं की जा सकती । भला वृषभानुनन्दिनी के दर्शन से नन्दनन्दन में शक्ति का संचार कैसे होगा – ब्रजवासियों की इस समुचित शंका का समाधान किया महर्षि गागुरि के इस कथन ने – 'बचपन में राधा को महर्षि दुर्वासा वरदान दे गये थे । यह तो उसी वरदान का कृपा प्रसाद है । इसमें भानु किशोरी की कोई महिमा नहीं ।' ऐसा कहकर वे महर्षि शाण्डिल्य तथा पौर्णमासी देवी की ओर देखकर मुस्कुराने लगे ।

गुरुजनों के सामने अपनी प्राणवल्लभा की वदन चन्द्र सुधा का पान करने में नन्दनन्दन के मुख पर जो संकोच की रेखायें उदित हुईं, वे तो रस सिन्धु की विशाल लहरें हैं, उनका वर्णन नहीं हो सकता । वृषभानुनन्दिनी के नेत्र कमल तो प्रायः भूमि पर ही गड़े रहते और सर्वथा सम्मुख रहते हुए भी प्राणवल्लभ के दर्शन की प्यास अनन्त गुना बढ़ती रहती । हाँ, जब दर्शन की अभिलाषा अपने चरम पर होती तो वृषभानु नन्दिनी अपने नेत्रों को क्षण भर के लिए उठाकर हृदय को शीतल कर लेती और वह भी इस सावधानी के साथ कि गुरुजन यह देख तो नहीं रहे कि मैं सब समय क्या कर रही हूँ ? तो क्या राधिका रानी को सात दिनों तक विरह के ताप में ही जलना पड़ा ? नहीं, रात्रि आती और सभी ब्रजवासी जब सो जाते तथा योगमाया की महिमा किसी को यह ज्ञात न होने देती कि नन्दनन्दन सोये नहीं हैं । इस प्रकार रात भर सहचरियों सहित श्रीराधारानी नन्दनन्दन के मुखचन्द्र का दर्शन करती रहतीं तथा नन्दनन्दन भी अपनी प्रिया के मुख कमल का दर्शन करते रहते । लोक में भी दोहा प्रचलित है –

कछु माखन को बल रह्यो, कछु ग्वालन करी सहाय । श्रीराधा कृपा कटाक्ष तें, गिरवर लियो उठाय ॥

इस प्रकार परोक्ष इन्द्र कोप से अगणित ब्रजवासी गोमाताओं की रक्षिका भी श्रीराधारानी सिद्ध हो जाती हैं ।

वृषभानुनन्दिनी बरसाने में निवास करती हैं । वृषभानुजी के गोष्ठों में गोसेवक ग्वालों की कोई कमी हो, ऐसा तो है नहीं, फिर भी राधारानी प्रातः – सायं स्वयं राजमहल के पास में स्थित गोशाला में जाकर गोमाताओं की सेवा करतीं । वे अपनी सखियों के साथ गोमाता को श्रृंगार धारण करातीं, अपने करकमल से गायों को कोमल घास और दाना पवाती थीं । गोमाता के गले तथा समस्त अंगों पर हाथ फिरातीं, गोमाता के श्रृंगों में घृत लगातीं, सखियों के साथ गायों का गोबर उठातीं और दूध भी दुहती थीं । वृषभानु गोप की बेटी होने के कारण वे गायों का दूध दुहने में सिद्ध न हों, भला यह कैसे सम्भव है ? राधिका रानी की रुचि होने के कारण वृषभानुबाबा, कीर्ति मैया, मौसी, दादी, नानी आदि किसी को भी उन्हें गो सेवा करते देखकर कोई आपत्ति नहीं होती थी । आखिर वे गोप नन्दिनी हैं और उनकी अवस्था भी अब इस सेवा के योग्य है । सायंकाल श्रीजी ललिता, विशाखा, चित्रा, इन्दुलेखा, चम्पकलता, रंगदेवी, तुंगविद्या, सुदेवी आदि सहचरियों के साथ वीणा, मुरज, मृदंग आदि वाद्य लेकर बैठ जाती हैं तथा संगीत के माध्यम से मानो अपने हृदय के भावों की अभिव्यक्ति गोमाताओं के प्रति करती रहती हैं ।

राधारानी बरसाने में हैं और श्यामसुन्दर नन्दगाँव में हैं तो उनका मिलन सहज सम्भव नहीं है । दोनों पक्षों से मिलन की अनेक युक्तियाँ रची जाती हैं । युक्तियों की पूर्णता में सहायक हैं गोमाता । गोपाल गोचारण के लिए वन पधारते हैं । अपनी पुत्री की प्रत्येक रुचि पूरा करने में तत्पर वृषभानु बाबा से लाड़ली राधा के लिए यह अनुमति लेना कठिन नहीं था कि क्या मैं भी अपनी समवयस्का सहचरियों के साथ दूध-दही विक्रय करने जा सकती हूँ और फिर जब राजकुमार होते हुए गोप किशोर होने के कारण श्रीदामा भैया गोचारण कर सकते हैं तो वृषभानुनन्दिनी दूध-दही का विक्रय क्यों नहीं कर सकतीं ? इस प्रकार युगल राधा-माधव का मिलन होता है और गोमाता के बहाने कितनी ही बार श्रीराधारानी अपने प्रियतम मोहन से मिलकर रस सागर में डूब जातीं ।

अब उस लीला का पट खुलता है जब अक्रूरजी गोपाल को रथ में बैठाकर ले जाते हैं । वृषभानुनन्दिनी की दशा तो अनिर्वचनीय है । वे वन में अपनी सहचरियों के साथ विराजमान हैं । नन्दनन्दन की सतत तल्लीन स्मृति के कारण उन्हें इस बात का भ्रम हो जाता है कि गोविन्द कहीं गये भी हैं या नहीं । वियोग के इन शत वर्षों में नन्दनन्दन की स्मृति के कारण श्रीराधिकारानी को बहुधा गोमाता की भी याद बनी ही रहती । उन्हें लगता अरे ! देखो ये मेरे प्रियतम गोचारण कर लौट रहे हैं । उनका श्यामल शरीर गायों के चरणों की धूल से सना होने के कारण उनके मुख का वर्ण (बेर के समान पीला) हो गया है । कितनी मनोहारिणी शोभा है अथवा कभी प्रतीत होता कि प्रियतम गोदोहन कर रहे हैं । उन्हें श्रम नहीं हो रहा । वे थनों को स्पर्श मात्र करते हैं और दूध की अविरल धारा भाण्ड में गिरने लगती है । कुछ ही पलों में पात्र पर्याप्त भर जाने से घर-घर शब्द होने लगता है । नन्दनन्दन का भेजा गया भ्रमर दूत आता है, चला जाता है । नन्दनन्दन मथुरा से द्वारका चले गये हैं – ये शब्द भी कान में पड़ते हैं । श्रीराधारानी के वियोग की संगिनी तो थी नन्दनन्दन की स्मृति और उनके स्मरण में सहज ही गोमाता का स्मरण हो ही जाया करता था ।

चिर वियोग की काली घटायें छटीं । गोवंश के साथ ही समस्त यदुवंश को लेकर नन्दनन्दन सूर्यग्रहण के अवसर पर कुरूक्षेत्र पधारे । समस्त व्रजवासी भी नन्दबाबा, वृषभानु बाबा के आनुगत्य में कुरूक्षेत्र पधारे । जब सब गोप-गोपियाँ गये तो वे यहाँ गोमाताओं को भला किसके भरोसे छोड़ जाते और अपनी प्राणप्यारी गोमाता को एकान्त ब्रज में ऐसे ही विचरण करने के लिए छोड़ जाना – क्या यह ब्रजवासियों द्वारा सम्भव भी है और फिर ब्रज की प्रत्येक गोमाता के हृदय में नन्दनन्दन के दर्शन की चरम व्याकुलता न हो, तब तो उन्हें ब्रज में छोड़ा भी जा सकता था । अस्तु, सभी ब्रजवासी समस्त गोवंश सहित कुरूक्षेत्र पहुँचे । परस्पर मिलन हुआ । रस का समुद्र बढ़ा । द्वारका में रहने वाली गोमातायें भी वृषभानुनन्दिनी के दर्शन, उनके स्पर्श तथा उनकी वचन सुधा के श्रवण से प्रेमविभोर हो गयीं । उनके हृदय में यह प्रबल लालसा जाग गयी कि हमारे दूध, दही, छाछ, माखन, घी आदि द्रव्यों का प्रयोग वृषभानुनन्दिनी की सेवा के काम आये । भला गोमाता की अभिलाषा भी कभी नन्दनन्दन के द्वारा अपूर्ण रह सकती है ? उन्होंने अपनी रानियों को श्रीराधिका रानी की सेवा करने की आज्ञा दी । रुक्मिणीजी राधारानी की सेवा करने

लगीं । राधारानी अत्यधिक संकोच में भरकर रुक्मिणी की भावना का आदर करने के लिए ही शीलवश सेवा स्वीकार करतीं । इसी क्रम में गोमाताओं की अभिलाषा पूर्ण हुई । प्रातः स्नान से पूर्व उबटन में बेसन के साथ प्रयुक्त मलाई के रूप में, इसके बाद छाछ तो राजभोग में दही तथा कढ़ी आदि व्यंजनों के रूप में, उत्थापन में विविध गो द्रव्य निर्मित मिठाइयों तथा शयन के पहले गाय के दूध के रूप में । एक बार उन्होंने श्यामसुन्दर के चरण सेवा के लिए जाने की शीघ्रता में भूलवश गरम दूध ही श्रीराधिका रानी के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया था । यह काफी गरम है, यह जानकर भी शीलवश श्रीश्यामाजू ने उसे तुरन्त ही पी लिया । रुक्मिणी जी अपने पति श्रीकृष्ण के समीप गयीं, पर यह क्या ? उन्होंने देखा कि श्यामसुन्दर के सुकोमल चरणों में छाले पड़ गये थे । उन्होंने रुक्मिणी से कहा – 'तुमने गरम दूध ही भूलवश श्रीराधारानी को दे दिया और शीलवश उन्होंने उसे पी भी लिया । उनके हृदय में मेरे चरण सदा विराजते हैं, इसी कारण ही मेरे चरणों में ये छाले हो गये ।'

कुछ दिन और गोमाता की सेवा वृषभानुनन्दिनी के कर कमल कर सके । कुछ दिन और अपनी प्राण प्यारी गोमाताओं को उनके प्राण प्यारे गोपाल की सुमधुर चर्चा सुनाते-सुनाते अविरल अश्रुधारा श्रीराधा के नेत्रों से निकलकर गोमाताओं के शरीर का अभिषेक कर देती । इसी प्रकार कुछ दिन और गोमाता ने भी अपनी अविरल आँसुओं की धारा तथा अविरल दूध की धारा के द्वारा वृषभानुनन्दिनी का अभिषेक किया । एक दिन सहसा दिव्य विमान उपस्थित हुआ और यशोदा मैया के साथ श्रीराधिकारानी उसमें बैठकर अपनी चिरसंगिनी गोमाताओं के साथ ही उनके लोक गोलोक में जा पहुँचीं ।

ब्रजशरण
श्रीमाताजी गौशाला,
श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

गौ–सेवकों की जिज्ञासा पर माताजी गौशाला का

Account number दिया जा रहा है –
SHRI MATAJI GAUSHALA, GAHVARVAN,BARSANA, MATHURA
Bank – Axis Bank Ltd ,
A/C – 915010000494364
IFSC – UTIB0001058
BRANCH – KOSI KALAN,
MOB. NO. –9927916699

मानमन्दिर लीलास्थल श्रीराधकृष्ण की लीला स्थलियों में सबसे प्रमुख है, इस अति विलक्षण लीला स्थली के पुनरुद्धार-कार्य में जुडकर धाम-सेवा का दुर्लभ लाभ प्राप्त करें

ACCOUNT NUMBER: **59109927338666**
IFSC CODE: **HDFC0000268**
BANK: **HDFC BANK LTD**
BRANCH: **BSA COLLEGE, MATHURA**
संपर्क :9927338666
www.maanmandir.org
आपकी सेवा राशि आयकर अधिनियम 80G/12A के अंतर्गत आयकर छूट के लिए मान्य है
रजिस्ट्रेशन नंबर AADTS716DEF2021401

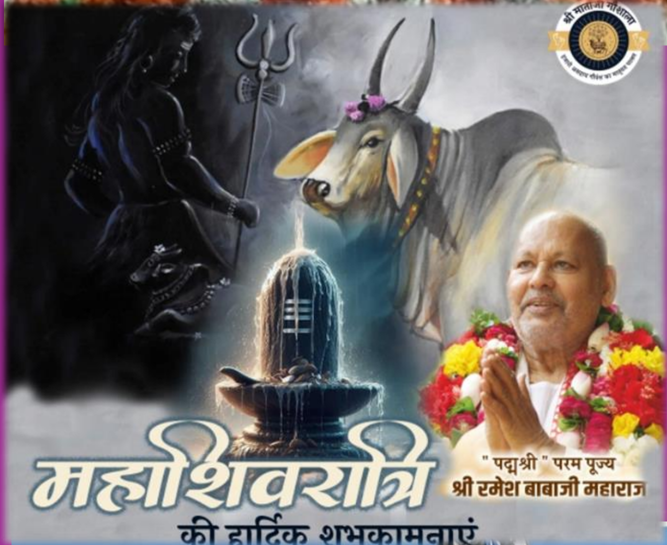
" पद्मश्री " परम पूज्य
श्री रमेश बाबाजी महाराज
महाशिवरात्रि
की हार्दिक शुभकामनाएं

बरसाने चलो खेलें होली

RNI REFERENCE NO. 1313397- REGISTRATION NO. UP BIL-2017/72945-TITLE CODE UP BIL-04953
POSTAL REGD.NO. 093/2024-2026 श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा 'गुप्ता प्रिन्टिंग प्रेस, खरौट गेट, कोसीकलाँ, मथुरा. उत्तरप्रदेश' से मुद्रित एवं मान मन्दिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से प्रकाशित [AGRA/WPP-12/2024-2026 AT 31.12.26]